दादा भगवान कथित

पैसों का व्यवहार



पैसे कमाना वह बुद्धि का खेल नहीं या मेहनत का फल नहीं,
वह तो आपने पूर्व में जो पुण्य किया था,
उसके फल स्वरूप आपको मिलते हैं।

दादा भगवान कथित

पैसों का व्यवहार

(संक्षिप्त)

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : **अजीत सी. पटेल**
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन,
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, नवरंगपुरा,
अहमदाबाद - 380009, Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77

प्रथम संस्करण : 2000, प्रतियाँ, सितम्बर, 2007
रीप्रिन्ट : 22100, प्रतियाँ, जुलाई, 2008 से नवम्बर, 2016
नई रीप्रिन्ट : 3000, प्रतियाँ, अक्तूबर, 2024

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 35 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
एच.बी.कापडिया न्यू हाइस्कूल के सामने,
छत्राल-प्रतापपुरा रोड, छत्राल,
ता. कलोल, जि. गांधीनगर-382729, गुजरात
फोन : +91 79 3500 2142

ISBN/eISBN : 978-93-86289-64-3

Printed in India

त्रिमंत्र







नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद



'दादा भगवान' कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन पर बैठे श्री ए.एम.पटेल रूपी देहमंदिर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य को भी प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे 'अक्रम मार्ग' कहा। क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना! अक्रम अर्थात् बिना क्रम के, लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। जो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। मैं खुद भगवान नहीं हूँ। मेरे भीतर प्रकट हुए दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) को 1958 में आत्मज्ञान प्रकट हुआ था। उसके बाद 1962 से 1988 तक देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे।

दादाश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरू बहन अमीन (नीरू माँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरू माँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी।

आत्मज्ञानी पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। वर्तमान में पूज्य नीरू माँ के आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेश में निमित्त भाव से आत्मज्ञान करवा रहे हैं।

इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, सभी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।



दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दुःखों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंतःकरण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 (पू)
53. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
55. आप्तवाणी - 14 (भाग-1 से 3)
58. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

समर्पण

चैन कहीं ना मिले इस कलिकाल में,
आगमन लक्ष्मी का, बेचैनी दिन-रात में।
पेट्रोल नहीं पर आर.डी.एक्स की ज्वाला में,
पानी नहीं, उबल रहा लहु संसार में।
धर्म में लक्ष्मी का हो गया व्यापार है,
हर ओर चल रहा काला बाज़ार है।
उबाल चहुँ ओर, काल यह विकराल है,
बचाओ, बचाओ, सर्वत्र यह पुकार है।
ज्ञानी पुरुष की सम्यक् समझ ही उबार है,
निर्लेप रखती सभी को, पैसों के व्यवहार में।
संक्षिप्त समझ यहाँ हुई शब्दस्थ है,
आदर्श धन व्यवहार की सौरभ बहे संसार में।
अद्भूत बोधकला 'दादा' के व्यवहार में,
समर्पित है जग तुझ चरण-कमल में।

-डॉ. नीरू बहन अमीन

संपादकीय

'*अणहक्क* के (बिना हक़ का) विषय नर्क में ले जाएँ।'

'*अणहक्क* की लक्ष्मी तिर्यंच में (पशुयोनि में) ले जाएँ।'

-दादाश्री

संस्कारी घरों में *अणहक्क* के विषय संबंधी जागृति कई जगहों पर प्रवर्तमान है लेकिन *अणहक्क* की लक्ष्मी संबंधित जागृति का मिलना बहुत मुश्किल है। हक़ और *अणहक्क* की लक्ष्मी की सीमा हो ऐसा नहीं है, उसमें भी इस भीषण कलिकाल में!

परम ज्ञानी पुरुष दादाश्री ने अपनी स्याद्वाद देशना में आत्मधर्म के सर्वोत्तम चोटी के सभी स्पष्टीकरण दिए हैं, इतना ही नहीं, लेकिन व्यवहार धर्म के भी उतने ही उच्च स्पष्टीकरण दिए हैं। जिससे निश्चय और व्यवहार, इन दोनों पंखों से समानान्तर मोक्षमार्ग पर उड़ा जा सके! इस काल में व्यवहार में यदि सब से विशेष प्राधान्य मिला हो तो वह सिर्फ पैसों को! और उन पैसों का व्यवहार जब तक आदर्शता को प्राप्त नहीं होता, तब तक व्यवहार शुद्धि संभव नहीं है। और जिसका व्यवहार दूषित हुआ, उसका निश्चय दूषित हुए बिना रहेगा ही नहीं! इसलिए पैसों के संपूर्ण दोष रहित व्यवहार का, इस काल को लक्ष्य में रखकर, पूज्यश्री ने सुंदर विश्लेषण किया है। और ऐसा संपूर्ण दोष रहित और आदर्श लक्ष्मी का व्यवहार आपश्री के जीवन में देखने को मिला है, महा-महा पुण्यशालियों को!

धर्म में, व्यापार में, गृहस्थ जीवन में, लक्ष्मी को लेकर स्वयं शुद्ध रहकर आपश्री ने संसार को एक अनोखे आदर्श का दर्शन करवाया। आपश्री का सूत्र, 'व्यापार में धर्म होना चाहिए मगर धर्म में व्यापार नहीं होना चाहिए' यहाँ, दोनों की आदर्शता बताई है! आपश्री ने अपने जीवन में निजी इक्स्पेन्स (खर्च) के लिए कभी किसी का एक पैसा भी स्वीकार नहीं किया। खुद के पैसे खर्च कर गाँव-गाँव सत्संग देने जाते, फिर चाहे ट्रेन से हो या प्लेन से हो! करोड़ों रुपये, सोने के अलंकार, आपश्री के आगे भाविकों ने रख दिए लेकिन आपश्री ने

उनको छुआ तक नहीं। दान देने की जिन्हें बहुत ही उत्कट इच्छा होती है, उन लोगों को लक्ष्मी सही रास्तों पर, मंदिर में या लोगों को भोजन कराने में व्यय करने की सलाह देते थे। और वह भी उस व्यक्ति की निजी आमदनी की जानकारी उनसे और उनके कुटुम्बीजनों से पूरी तरह से जान लेने के बाद, सभी की रज़ामंदी है, ऐसा जानने के बाद 'हाँ' कहते!

संसार व्यवहार में पूर्णतया आदर्श रहने वाला, संपूर्ण वीतराग पुरुष जैसा आज तक दुनिया ने देखा नहीं, ऐसा पुरुष इस काल में देखने को मिला। उनकी वीतराग वाणी सहज प्राप्य हुई। व्यावहारिक जीवन में निर्वाह के लिए लक्ष्मी प्राप्ति अनिवार्य है, फिर वह नौकरी करके या व्यापार करके या फिर अन्य किसी तरीके से हो, लेकिन कलियुग में व्यापार करते हुए भी वीतरागों की राह पर किस तरह चला जाए, उसका अचूक मार्ग पूज्यश्री ने अपने अनुभव के निष्कर्ष द्वारा प्रकट किया है। दुनिया ने कभी देखा तो क्या, कभी सुना भी नहीं होगा, ऐसा बेजोड़ साझेदारी का 'रोल' उन्होंने दुनिया को दिखाया। आदर्श शब्द भी वहाँ वामन प्रतीत होता है क्योंकि 'आदर्श', वह तो सामान्य मनुष्यों द्वारा अनुभव के आधार पर तय की हुई चीज़, जब कि पूज्यश्री का जीवन तो अपवाद रूप आश्चर्य है!

व्यापार में साझेदारी, छोटी उम्र से, 22 साल की उम्र से ही जिनके साथ साझेदारी की, तो अंत तक उनकी संतानों के साथ भी आदर्श प्रणाली से उन्होंने यह साझेदारी निभाई। कॉन्ट्रैक्ट के व्यापार में लाखों की आमदनी करते, लेकिन नियम उनका यह था कि नॉन-मैट्रिक की पढ़ाई के साथ यदि वे खुद नौकरी करते तो कितनी तनख्वाह मिलती? पाँच सौ अथवा छः सौ। इसलिए उतने ही पैसे घर में आने देने चाहिए बाकी के व्यापार में रखने चाहिए, जिससे घाटे के समय में काम आए! और सारा जीवन इस नियम को पकड़े रखा! साझेदार के वहाँ बेटे-बेटियों की शादी हो उसका खर्च भी आपश्री फिफ्टी-फिफ्टी पार्टनरशीप में करते! ऐसी आदर्श साझेदारी वर्ल्ड में कहाँ देखने को मिलेगी?

पूज्यश्री ने व्यापार आदर्श रूप से, बेज़ोड़ तरीके से किया, फिर भी चित्त तो आत्मा प्राप्त करने में ही था। 1958 में ज्ञानप्राप्ति के उपरांत भी कई सालों तक व्यापार चलता रहा। लेकिन खुद आत्मा में और मन-वचन-काया, जगत् को आत्मा प्राप्त कराने हेतु गाँव-गाँव, संसार के कोने कोने में पर्यटन करने में व्यतित किया। वह कैसी अलौकिक दृष्टि प्राप्त हुई कि जीवन में, व्यापार-व्यवहार और अध्यात्म दोनों 'एट-ए-टाइम' (एक ही समय) सिद्धि के शिखर पर रहकर संभव हुआ?

लोक संज्ञा का प्राधान्य ही लक्ष्मी है, पैसा ही ग्यारहवाँ प्राण माना जाता है। वह प्राण समान पैसों का व्यवहार जीवन में जो हो रहा है उसके संबंध में, आवन-जावन के, नफा-नुकसान के, टिकने के और अगले जन्म में साथ में ले जाने के जो मार्मिक सिद्धांत हैं और लक्ष्मी स्पर्शना के जो नियम हैं, उन सभी को, ज्ञान में देखकर और व्यवहार में अनुभव करके वाणी द्वारा जो ब्योरा प्राप्त हुआ वह, 'पैसों का व्यवहार' इस ग्रंथ के रूप में सुज्ञ पाठकों को जीवनभर सम्यक् जीवन जीने में सहायक होगा, यही अभ्यर्थना।

डॉ. नीरु बहन अमीन के
जय सच्चिदानंद

पैसों का व्यवहार

[1] लक्ष्मी जी का आना-जाना

सारे संसार ने ही लक्ष्मी को मुख्य माना है न! प्रत्येक कार्य में लक्ष्मी ही मुख्य है, इसलिए लक्ष्मी पर ही ज़्यादा प्रीति है। जहाँ लक्ष्मी पर ज़्यादा प्रीति होती है, वहाँ भगवान के प्रति प्रीति नहीं हो पाती। भगवान पर प्रीति होने के बाद लक्ष्मी की प्रीति गायब हो जाएगी। दोनों में से एक पर प्रीति रहेगी, या तो लक्ष्मी पर या तो भगवान पर। आपको ठीक लगे वहाँ रहिए। लक्ष्मी बैधव्य लाएगी, शादी की तो वैधव्य आएगा ही और नारायण, शादी भी नहीं करवाते और वैधव्य भी नहीं लाते, निरंतर आनंद में रखते हैं, मुक्तभाव में रखते हैं।

बात तो समझनी पड़ेगी न? इस प्रकार गड़बड़ कहाँ तक चलेगी? और *उपाधि* (परेशानी) पसंद तो नहीं है। यह मनुष्य देह *उपाधि* से मुक्त होने के लिए है, केवल पैसा कमाने के लिए नहीं है। पैसे किस तरह कमाते होंगे? मेहनत से कमाते होंगे या बुद्धि से?

प्रश्नकर्ता : दोनों से।

दादाश्री : यदि मेहनत से पैसे कमा रहे होते तो इन मज़दूरों के पास बहुत सारे पैसे होते। क्योंकि ये मज़दूर ही ज़्यादा मेहनत करते हैं न! और यदि पैसे बुद्धि से कमा रहे होते तो ये सभी पंडित हैं ही न! लेकिन उनकी तो पीछे से आधी चप्पल भी घिस चुकी होती है! पैसे कमाना, यह बुद्धि के खेल नहीं और ना ही मेहनत का फल है। वह तो आपने पिछले जन्म में पुण्य किया है, उसके फल स्वरूप आपको प्राप्त होता है। और नुकसान, वह पाप किया था, उसके फल स्वरूप है। लक्ष्मी, पुण्य और पाप के अधीन है। इसलिए यदि लक्ष्मी चाहिए तो हमें पुण्य-पाप का ध्यान रखना चाहिए।

लक्ष्मी जी तो पुण्यशाली के पीछे ही घूमती रहती है और मेहनती लोग लक्ष्मी जी के पीछे घूमते रहते हैं। इसलिए हमें समझ लेना चाहिए कि पुण्य होगा तो लक्ष्मी जी पीछे आएँगी वर्ना मेहनत से तो रोटियाँ मिलेगी, खाना-पीना मिलेगा, और एकाध बेटी होगी तो उसकी शादी होगी। बाकी बिना पुण्य के लक्ष्मी नहीं मिलती।

इसलिए वास्तविकता क्या कहती है कि यदि तू पुण्यशाली है तो क्यों छटपटाता है? और तू पुण्यशाली नहीं है तब भी क्यों छटपटा रहा है?

पुण्यशाली भी कैसा? यह अमलदार को भी ऑफिस से अकुलाकर घर वापस आते हैं न, तब पत्नी क्या कहती है, 'डेढ़ घंटे लेट आए, कहाँ गए थे?' यह देखो पुण्यशाली! पुण्यशाली के साथ क्या ऐसा होता है? पुण्यशाली को एक उल्टी लहर भी नहीं छूती। बचपन से ही वह क्वालिटी (गुणवत्ता) अलग होती है। उसे अपमान का संयोग प्राप्त नहीं हुआ होता। जहाँ जाए वहाँ 'आइए आइए भाईजी' इस प्रकार परवरिश होती है। और यह तो यहाँ टकराया, वहाँ टकराया। इसका अर्थ ही क्या है? फिर पुण्य खत्म हो जाए तो जैसा था वैसा हो जाता है। यानी तू पुण्यशाली नहीं है तो सारी रात पट्टी बाँधकर फिरे (ज़्यादा मेहनत करे), तब भी क्या सुबह पचास रुपये मिल जाएँगे? इसलिए छटपटाना नहीं। और जो कुछ मिला उसमें खा-पीकर पड़ा रह चुपचाप।

लक्ष्मी (धन) अर्थात् पुण्यशाली लोगों का काम है। पुण्य का हिसाब ऐसा है कि, कड़ी मेहनत करे और कम से कम मिले वह बहुत ही कम, नाम मात्र का पुण्य कहलाता है। शारीरिक मेहनत बहुत नहीं करनी पड़े और वाणी की मेहनत करनी पड़े, वकीलों की तरह, वह पहले की तुलना में थोड़ा अधिक पुण्य कहलाता है। और उससे आगे क्या? वाणी की झंझट के बिना, शारीरिक झंझट के बिना, केवल मानसिक झंझट से कमाए वह अधिक पुण्यशाली कहलाता है। और उससे भी आगे क्या? संकल्प करते ही तैयार हो जाए। संकल्प किया यह मेहनत। संकल्प किया कि दो बंगले, एक गोदाम, ऐसा संकल्प

किया तैयार हो जाता है। वह महा पुण्यशाली। संकल्प किया, इतनी (ही) मेहनत, बस। संकल्प करना पड़ेगा। संकल्प के बिना नहीं होगा। थोड़ी सी मेहनत तो चाहिए न!

संसार, वह बिना मेहनत का फल है। इसलिए भोगो, किन्तु भोगना भी आना चाहिए। भगवान ने कहा कि इस संसार में जितनी आवश्यक चीज़ें हैं, उनमें यदि तुम्हें कमी हो तब स्वाभाविक रूप से दुःख होगा। इस वक्त हवा बंद हो गई हो और दम घुट रहा हो तो हम कहेंगे कि दुःख है इन लोगों को। दम घुटने जैसा वातावरण हो तब दुःख कहलाएगा। दोपहर हो जाए और दो-तीन बजे तक खाना नहीं मिले तो हम समझें कि इन्हें दुःख है कुछ। जिसके बगैर शरीर जी नहीं सके ऐसी आवश्यक चीज़ें, वे नहीं मिलें, तब वह दुःख कहलाएगा। यह सब तो है, विपुल मात्रा में है, लेकिन उसे भोगते भी नहीं और अन्य बातों में उलझे पड़े हैं। उसे भुगतते ही नहीं। क्योंकि एक मिल मालिक भोजन करने बैठता है, तब बत्तीस तरह के पकवान होते हैं लेकिन वह मिल में होता है। सेठानी पूछे कि, 'पकौड़ें किस चीज़ के हैं?' तब कहता है, 'मुझे मालूम नहीं। तू बार बार पूछा मत कर।' ऐसा है यह सब।

यह संसार तो ऐसा है। उसमें भोगने वाले भी होते हैं और मेहनत करने वाले भी होते हैं, सब मिला जुला होता है। मेहनत करने वाले ऐसा समझते हैं कि यह 'मैं कर रहा हूँ।' उनमें यह अहंकार होता है। जब कि भोगने वालों में यह अहंकार नहीं होता। लेकिन तब उन्हें भोक्तापन का रस मिलता है। मेहनत करने वालों को अहंकार का गर्वरस मिलता है।

एक सेठ ने मुझ से कहा, 'मेरे बेटे से कुछ कहिए न, मेहनत नहीं करता। चैन से गुलछर्रे उड़ाता है।' मैंने कहा, 'कुछ कहने जैसा नहीं है। वह अपने खुद के हिस्से का पुण्य भुगत रहा है उसमें हम क्यों दख़ल दें?' इस पर उस सेठ ने मुझ से कहा कि, 'उसे समझदार नहीं बनाना है?' मैंने कहा, 'संसार में जो भोग रहा है वह समझदार कहलाता है। बाहर फेंक दे, वह पगला कहलाता है और मेहनत करता

रहे वह तो मज़दूर कहलाता है।' लेकिन जो मेहनत करता है उसे अहंकार का रस मिलता है न! जब अचकन (लंबा कोट) पहनकर जाता है, तब लोग, 'सेठजी आए, सेठजी आए', करते हैं, इतना ही केवल। और भोगने वाले को ऐसी कुछ सेठ-बेठ की परवाह नहीं होती। हमने तो जितना अपना भोगा उतना ठीक।

दुनिया का कानून ऐसा है कि, हिन्दुस्तान में जैसे जैसे-बिना बरकत के लोग पैदा होंगे, वैसे लक्ष्मी बढ़ती जाएगी और जो बरकत वाला होगा उसके पास रुपये नहीं आने देंगे। अर्थात् यह तो बिनबरकत के लोगों को लक्ष्मी प्राप्त हुई है, और टेबल पर भोजन मिलता है। कैसे खाना-पीना, सिर्फ इतना ही नहीं आता।

इस काल के जीव भोले हैं! कोई ले गया, फिर भी कुछ नहीं। उच्च जाति, नीच जाति कुछ परवाह नहीं। ऐसे भोले हैं इसलिए लक्ष्मी बहुत आती है। लक्ष्मी तो, जो बहुत जाग्रत होगा उसके पास ही नहीं आएगी। बहुत जाग्रत होगा वह बहुत कषाय करेगा। सारा दिन कषाय करता रहेगा। और यह (भोले) तो जाग्रत नहीं, कषाय ही नहीं न, कोई झंझट ही नहीं न! लक्ष्मी आए वहाँ, लेकिन खर्च करना नहीं आता। अभानता में चली जाती है सब।

यह धन जो है न आजकल, यह सारा धन ही खोटा है। बहुत कम धन सच्चा है। दो तरह का पुण्य होता है, एक पापानुबंधी पुण्य कि जो अधोगति में ले जाता है ऐसा पुण्य और जो उर्ध्वगति में ले जाए वह पुण्यानुबंधी पुण्य। अब ऐसा धन बहुत कम बचा है। वर्तमान में ये रुपये जो बाहर सब जगह दिखाई देते हैं न, वे पापानुबंधी पुण्य के रुपये हैं और वे निरे कर्म बाँधते हैं और भयंकर अधोगति में ले जा रहे हैं। पुण्यानुबंधी पुण्य कैसा होता है? निरंतर अंतरशांति के साथ शान शौकत होती है। वहाँ धर्म होता है।

आज की लक्ष्मी पापानुबंधी पुण्य की है, इसलिए वह क्लेश कराए ऐसी है, उसके बजाय कम आए तो अच्छा। घर में क्लेश तो नहीं पैठे। आज जहाँ-जहाँ लक्ष्मी का प्रवेश होता है, वहाँ क्लेश का

वातावरण छा जाता है। एक रोटी और सब्ज़ी भले हो, लेकिन बत्तीस प्रकार के व्यंजन काम के नहीं। इस काल में यदि सच्ची लक्ष्मी आए तब एक ही रुपया, अहोहो....कितना सुख देकर जाएगा! पुण्यानुबंधी पुण्य तो घर में सभी को सुख-शांति देकर जाता है, घर में सभी को धर्म के ही विचार आते हैं।

मुंबई में एक उच्च संस्कारी परिवार की बहन से मैंने पूछा, 'घर में क्लेश तो नहीं होता न?' तब उन बहन ने कहा, 'रोज़ाना सुबह क्लेश के नाश्ते होते हैं!' मैंने कहा, 'तब तो तुम्हारे नाश्ते के पैसे बच गए, नहीं?' बहन ने कहा, 'नहीं, फिर भी निकालने पड़े, ब्रेड पर मक्खन लगाना होता है!' तब क्लेश भी होता रहता है और नाश्ता भी चलता रहता है, अरे, किस प्रकार के आदमी हो?

हमेशा ही, यदि लक्ष्मी निर्मल होगी तो सब अच्छा रहेगा, मन अच्छा रहेगा। यह लक्ष्मी अनिष्ट आई है उससे क्लेश होता है। हमने बचपन में तय किया था कि जहाँ तक हो सके तब तक खोटी लक्ष्मी पैठने ही नहीं देनी है। इसलिए आज छियासठ साल हुए, लेकिन फिर भी खोटी लक्ष्मी पैठने ही नहीं दी। इसी कारण तो घर में कभी क्लेश उत्पन्न हुआ ही नहीं। घर में तय किया था कि इतने पैसों से घर चलाना। व्यापार में लाखों की कमाई हो, लेकिन यह 'पटेल' सर्विस करने जाते तो तनख्वाह क्या मिलती? ज़्यादा से ज़्यादा छः सौ-सात सौ रुपये मिलते। व्यापार, यह तो पुण्य का खेल है। अतः जितने नौकरी में मिलते उतने पैसे ही घर में खर्च कर सकते हैं, शेष तो व्यापार में ही रहने देने चाहिए। इन्कमटैक्स वाले का पत्र आने पर हम कहें कि, वह रकम थी वह भर दो। कब कौन सा अटैक आएगा (मुसीबत) उसका कोई ठिकाना नहीं। और यदि वह पैसे खर्च कर दें तो वहाँ इन्कमटैक्स वाले का अटैक आएगा तो हमें यहाँ वह दूसरा (हार्ट) 'अटैक' आ जाएगा। सब जगह अटैक घुस गए हैं न? इसे जीवन कैसे कहा जाए? आपको क्या लगता है। भूल महसूस होती है या नहीं? हमें वह भूल सुधारनी है।

लक्ष्मी सहज भाव से प्राप्त हो रही हो तो होने देना। लेकिन

उस पर आधार मत रखना। आधार रखकर 'चैन' से बैठे लेकिन कब आधार खिसक जाए, यह कह नहीं सकते। अतः सँभलकर चलना ताकि *अशाता* (दुःख परिणाम) वेदनीय में हिल न जाएँ।

प्रश्नकर्ता : सुगंधी वाली लक्ष्मी कैसी होती है?

दादाश्री : वह लक्ष्मी हमें ज़रा सी भी चिंता नहीं करवाती। घर में सिर्फ सौ रुपये हों, फिर भी हमें ज़रा सी भी चिंता नहीं करवाए। कोई यदि कहे कि कल से शक्कर पर कंट्रोल आने वाला है, फिर भी मन में चिंता नहीं होगी। चिंता नहीं, हाय-हाय नहीं। वर्तन कैसा खुशबूदार, वाणी कैसी खुशबूदार, और उसे पैसे कमाने का विचार ही नहीं आता ऐसा पुण्यानुबंधी पुण्य होता है। पुण्यानुबंधी पुण्यवाली लक्ष्मी होगी तो उसे पैसे पैदा करने के विचार ही नहीं आएँगे। यह तो सब पापानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी है। इसे तो लक्ष्मी भी नहीं कह सकते! निरे पाप के ही विचार आते रहें, 'कैसे इकट्ठा करें, कैसे इकट्ठा करें' यही पाप है। कहते हैं कि पहले के ज़माने में सेठों के यहाँ ऐसी पुण्यानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी हुआ करती थी! वह लक्ष्मी जमा होती थी, जमा करनी नहीं पड़ती थी। जब कि इन लोगों को तो जमा करनी पड़ती है। वह लक्ष्मी तो सहज भाव से आया करती थी। खुद ऐसा कहे कि, 'हे प्रभु! यह राजलक्ष्मी मुझे स्वप्न में भी नहीं हो' फिर भी वह आती ही रहती थी। वे क्या कहते थे कि आत्मलक्ष्मी हो लेकिन यह राजलक्ष्मी हमें स्वप्न में भी नहीं हो। फिर भी वह आती रहे, वह पुण्यानुबंधी पुण्य।

हमें भी संसार में अच्छा नहीं लगता था। मेरा वृत्तांत ही कहता हूँ न! मुझे स्वयं किसी भी चीज़ में रुचि ही नहीं रहती थी। पैसा देते तब भी बोझ लगता रहता था। मेरे अपने रुपये देते, फिर भी भीतर बोझ महसूस होता था। ले जाने में भी बोझा लगता, लाने में भी बोझा लगता। हर बाबत में बोझ लगता, यह ज्ञान होने से पहले।

प्रश्नकर्ता : हमारे विचार ऐसे हैं और व्यापार में इतने ओतप्रोत हैं कि लक्ष्मी का मोह जाता ही नहीं, उसीमें डूबे हुए हैं।

दादाश्री : इसके बावजूद पूर्ण संतोष नहीं होता न! जैसे कि पच्चीस लाख इकट्ठे करूँ, पचास लाख इकट्ठे करूँ, ऐसा रहा करता है न?

ऐसा है, पच्चीस लाख इकट्ठे करने में तो मैं भी पड़ा रहता, लेकिन मैंने हिसाब निकालकर देख लिया कि यहाँ आयुष्य का इक्सटेन्शन नहीं मिलता। सौ के बजाय हज़ार साल जीना होता तो मानो ठीक था कि की हुई मेहनत काम की। यह तो आयुष्य का कोई ठिकाना नहीं है।

एक स्वसत्ता है, दूसरी परसत्ता है। स्वसत्ता कि जिस में स्वयं परमात्मा हो सकता है। जब कि पैसे कमाने की सत्ता आपके हाथ में नहीं, वह परसत्ता है, तब पैसे कमाना अच्छा है या परमात्मा होना अच्छा? पैसे कौन देता है यह मैं जानता हूँ। पैसे कमाने की सत्ता खुद के हाथों में होती न, तो झगड़ा करके भी कहीं से भी लेकर आता, लेकिन वह परसत्ता है। अतः चाहे कुछ भी कर लो, फिर भी कुछ होने वाला नहीं है। एक आदमी ने पूछा कि लक्ष्मी किसके जैसी है? तब मैंने कहा कि नींद जैसी। किसी को सोते ही तुरंत नींद आ जाती है और किसी को सारी रात करवटें बदलते रहने पर भी नींद नहीं आती, और कई तो नींद लाने के लिए गोलियाँ खाते हैं। यानी कि यह लक्ष्मी आपकी सत्ता की बात नहीं है, वह परसत्ता है। और हमें परसत्ता की चिंता करने की क्या ज़रूरत?

इसलिए हम आपसे कहते हैं कि भले ही कितनी भी माथापच्ची (झंझट) करो तो भी पैसे मिलें, ऐसा नहीं है। वह 'इट हैपन' (अपने आप हो रहा है) है। हाँ, और आप उसमें निमित्त हैं। कोर्ट में आना-जाना, वह निमित्त है। आपके मुँह से वाणी निकलती है, वह सब निमित्त है, इसलिए आप इसमें बहुत ध्यान मत देना, अपने आप ध्यान दे ही दिया जाएगा और इसमें आपको कोई परेशानी आए, ऐसा नहीं है।

यह तो मन में ऐसा समझ बैठे हैं कि, नहीं, मैं नहीं होऊँगा तो चलेगा ही नहीं। ये कोर्ट बंद हो जाएँगी ऐसा समझ बैठे हैं। लेकिन ऐसा कुछ नहीं है।

यह लक्ष्मी का प्राप्त होना, इसके लिए भी कितने ही कारण इकट्ठे हों तब जाकर वह लक्ष्मी प्राप्त हो, ऐसा है। किसी डॉक्टर के फादर को यहाँ गले में कफ़ फँस गया हो, तब डॉक्टर से कहें कि इतने बड़े-बड़े ऑपरेशन किए तो यह कफ़ निकाल दो न! तब कहेगा, 'नहीं। निकालूँ उससे पहले तो मर जाएँगे।' यानी इसमें इतना सा भी किसी का नहीं चलता। 'एविडेन्स' जमा हुए, सभी! मैं ज्ञानी बना, वह तो 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' के आधार पर। ये लोग करोड़पति भी स्वयं नहीं हुए। लेकिन मन में समझते हैं कि 'मैं बना', इतनी ही भ्रांति है। और ज्ञानी पुरुष को भ्रांति नहीं रहती। जैसा हो वैसा बता देते हैं कि, 'भाई ऐसा हुआ था। मैं सूरत के स्टेशन पर बैठा था और ऐसा हो गया।' और वह (करोड़पति) समझता है कि मैं दो करोड़ कमाए और तीन शादी की! लेकिन यह सब तो आप लेकर आए हो। यह तो मन में समझ बैठे हो कि, 'नहीं, मैं कर रहा हूँ' उतना ही है। यह इगोइज़म है और वह इगोइज़म क्या करता है? (इस इगोइज़म के आधार पर) आप अपने अगले (जन्म) की योजना तैयार कर रहे हो। इस प्रकार, जन्मों जन्म की योजना बनाता ही रहता है जीव, इसलिए उसका जन्म मरण रुकता नहीं। योजना बंद हो जाएगी तब उसकी मोक्ष में जाने की तैयारी होगी।

एक भी जीव ऐसा नहीं होगा कि जो सुख नहीं खोज रहा होगा! और वह भी शाश्वत सुख खोजता है। वह ऐसा समझता है कि लक्ष्मी में सुख है, लेकिन उसमें भी फिर अंदर जलन पैदा होती है। जलन होना और शाश्वत सुख प्राप्त होना वह कभी भी हो ही नहीं सकता। दोनों विरोधाभासी हैं, इसमें लक्ष्मी जी का दोष नहीं है। उसका खुद का दोष है।

संसार की सभी चीज़ें एक दिन अप्रिय हो जाती हैं, लेकिन आत्मा तो खुद का स्वरूप ही है, वहाँ दुःख है ही नहीं। संसार में तो, जो पैसे दे, वह भी अप्रिय हो जाता है। कहाँ रखें फिर, परेशानी हो जाती है।

अर्थात् पैसे हो तो भी दुःख, नहीं हो तो भी दुःख, बड़े मंत्री

भी बने तो भी दुःख, गरीब हो तो भी दुःख। भिखारी हो तो भी दुःख, विधवा को दुःख, सधवा को दुःख और सात पति वाली को भी दुःख। दुःख, दुःख और दुःख। अहमदाबाद के सेठ लोगों को भी दुःख। क्या कारण होगा इसका?

प्रश्नकर्ता : उन्हें संतोष नहीं है।

दादाश्री : इसमें सुख था ही कहाँ लेकिन? सुख था ही नहीं इसमें। यह तो भ्रांति से प्रतीत होता है। जैसे किसी शराबी का एक हाथ गटर में पड़ा हो, तब भी कहेगा, हाँ भीतर ठंडक लग रही है। बहुत अच्छा है, ऐसा शराब की वजह से लगता है। बाकी इसमें सुख होगा ही कहाँ? यह तो निरी जूठन है सब।

इस संसार में सुख है ही नहीं। सुख हो ही नहीं सकता और यदि सुख होता तब तो मुंबई ऐसा नहीं होता। सुख है ही नहीं। यह तो भ्रांति का सुख है और वह भी टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है केवल।

धन का बोझा रखने जैसा नहीं है। जब बैंक में जमा होता है तो चैन की साँस लेता है, और जब जाए तब दुःख होता है। इस संसार में कुछ भी चैन की साँस लेने जैसा नहीं है, क्योंकि टेम्परेरी है।

मनुष्य को क्या दुःख रहता है? एक व्यक्ति ने मुझ से कहा, कि मेरा बैंक में कुछ नहीं। बिल्कुल खाली हो गया हूँ। कंगाल हो गया हूँ। मैंने पूछा, 'कर्ज़ा कितना था?' उसने कहा, 'कर्ज़ा नहीं था।' तब कंगाल नहीं कहलाएगा। बैंक में हज़ार दो हज़ार रुपये पड़े हैं। फिर मैंने कहा, 'वाइफ तो है न?' उसने कहा कि वाइफ थोड़े ही बेची जाएगी? मैंने कहा, 'नहीं, लेकिन तेरी दो आँखें हैं, वे तुझे दो लाख में बेचनी हैं?' ये आँखें, ये हाथ, पैर, दिमाग़ इन सब मिल्कियत की तू क़ीमत तो लगा। बैंक में पैसा नहीं है, फिर भी तू करोड़पति है। तेरी कितनी सारी मिल्कियत है, उसे बेच दे, चल। ये दो हाथ भी तू नहीं बेचेगा! बेहिसाब मिल्कियत है तेरी। इन सब को मिल्कयत समझकर तुझे संतोष रखना चाहिए। पैसा आया या नहीं आया लेकिन दो वक्त का भोजन मिलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जीवन में आर्थिक परिस्थिति कमज़ोर हो तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : एक साल बारिश नहीं हो, तो किसान क्या कहते हैं कि हमारी आर्थिक स्थिति खत्म हो गई। ऐसा कहते हैं या नहीं कहते? फिर दूसरे साल बारिश होती है, तब उसका सुधर जाता है। अर्थात् आर्थिक स्थिति कमज़ोर हो तब धैर्य रखना चाहिए। खर्च कम कर देना चाहिए और किसी भी तरीके से मेहनत, प्रयत्न अधिक करने चाहिए। अर्थात् कमज़ोर परिस्थिति हो तभी यह सब करना है, बाकी परिस्थिति अच्छी हो तब तो गाड़ी अपने आप चलती रहती है।

इस देह को ज़रूरत के अनुसार खुराक देने की ही आवश्यकता है, उसे और कुछ आवश्यक नहीं, वर्ना फिर ये त्रिमंत्र हर रोज़ एक-एक घंटा बोलना न! ये बोलोगे तो आर्थिक परिस्थिति सुधर जाएगी। उसका उपाय करना चाहिए। उपाय करें तो सुधर जाएगा। आपको यह उपाय पसंद आएगा?

इन दादा भगवान का एक घंटा नाम ले तो पैसों के ढेर लगेंगे। लेकिन ऐसा करते नहीं हैं। बाकी हज़ारों लोगों के पास पैसे आए है। हज़ारों लोगों की अड़चनें गई। 'दादा भगवान' का नाम ले और पैसा नहीं आए तो ये 'दादा' ही नहीं है। लेकिन वापस घर जाकर ये लोग इस प्रकार नाम लेते नहीं न!

लक्ष्मी तो कैसी है? कमाने में दुःख, सँभालने में दुःख, रक्षण करते दुःख और खर्च करने में भी दुःख। घर में लाख रुपये आ जाएँ तो उसे संभालने की परेशानी हो जाती है। किस बैंक में इसकी सेफसाइड (सलामती) है, वह खोजना पड़ता है और सगे-संबंधियों को पता चल जाए तो तुरंत दौड़े आते हैं। मित्र सब दौड़े आते हैं, कहने लगते हैं, 'अरे यार मुझ पर इतना भी विश्वास नहीं? केवल दस हज़ार की ज़रूरत है', तब फिर ज़बरदस्ती देने पड़ते हैं। यह तो, पैसों का भराव हो तब भी दुःख और तंगी हो तब भी दुःख। यह तो नोर्मल हो वही अच्छा है, वर्ना फिर लक्ष्मी खर्च करने में भी दुःख होता है।

लोगों को तो लक्ष्मी को सँभालना नहीं आता और भोगना भी नहीं आता। भोगते समय कहेंगे कि इतना महंगा? इतना महंगा कैसे लें? अबे चुपचाप भोग ले न! लेकिन भोगते समय भी दुःख, कमाते हुए भी दुःख। लोग परेशान करते हों उसमें कमाना, कई तो उगाही के पैसे नहीं देते। इसलिए कमाते हुए भी दुःख और सँभालने में भी दुःख। सँभालकर रखें फिर भी बैंक में रहते ही नहीं न! बैंक खाते का नाम ही क्रेडिट और डेबिट, *पूरण* (जमा) और *गलन* (खर्च)! जब लक्ष्मी जाए, तब भी बहुत दुःख देती है!

कई लोग तो इन्कमटैक्स पचाकर बैठ गए होते हैं। पच्चीस-पच्चीस लाख दबाकर बैठे होते हैं। लेकिन वे जानते नहीं कि सभी रुपये चले जाएँगे। फिर इन्कमटैक्स वाले नोटिस देंगे, तब रुपये कहाँ से निकालेंगे? यह तो निरा फँसाव है। इन ऊपर चढ़े हुए लोगों की बहुत जोखिमदारी है लेकिन वह जानता ही नहीं न! उल्टे सारा-दिन किस तरह इन्कमटैक्स बचाऊँ, यही ध्यान। इसीलिए हम कहते हैं न कि ये तो तिर्यंच (जानवर गति) का रिटर्न टिकट लेकर आए हैं!

सारे संसार के लोगों की मेहनत कोल्हू चला-चलाकर व्यर्थ जाती है, वहाँ बैल को खली देते हैं, जब कि यहाँ बीवी रोटी का टुकड़ा देती है, ताकि चले, सारा दिन बैल की तरह कोल्हू चलाता रहता है।

अहमदाबाद के सेठों को दो-दो मिलें हैं फिर भी उनकी परेशानी का यहाँ पर वर्णन नहीं हो सकता, ऐसा है। दो दो मिलें हैं, फिर भी वे कब फेल हो जाएँ, यह कह नहीं सकते। यूँ तो स्कूल में अच्छी तरह पास हुए थे, लेकिन यहाँ फेल हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने बेस्ट-फूलिशनेस शुरू की है। 'डिसऑनेस्टी इस द बेस्ट फूलिशनेस'! (बेईमानी सर्वोपरि मूर्खता है।) इस फूलिशनेस की कोई तो हद होगी न? या बेस्ट तक पहुँचना है? तो आज बेस्ट फूलिशनेस तक पहुँचे हैं!

मैंने तो पैसों का हिसाब निकाला। मैंने सोचा, 'हम पैसा बढ़ाते रहें तो कहाँ तक बढ़ेगा?' फिर हिसाब लगाया कि इस दुनिया में किसी का पहला नंबर नहीं आया है। लोग कहते हैं कि 'फोर्ड का

पहला नंबर है' लेकिन चार साल बाद किसी दूसरे का नाम सुनने को मिलता है। यानी, किसी का भी नंबर टिकता नहीं है, बेकार ही दौड़-भाग करते रहें, इसका क्या अर्थ है? पहले घोड़े पर इनाम होता है, दूसरे पर थोड़ा देते हैं और तीसरे को भी देते हैं। चौथे को तो झाग निकाल-निकालकर मर जाना है? मैंने कहा, 'मैं क्यों इस रेसकोर्स में उतरूँ?' ये लोग तो चौथा, पाँचवाँ, बारहवाँ और सौवाँ नंबर देंगे न? फिर, हम क्यों बेकार मेहनत करें? क्या फिर झाग नहीं निकलेगा? पहला आने के लिए दौड़े और आए बारहवें, फिर तो चाय भी नहीं पिलाते हैं। आपको क्या लगता है?

लक्ष्मी लिमिटेड है और लोगों की माँग अनलिमिटेड है!

किसी को विषय की *अटकन* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) होती है, किसी को मान की *अटकन* पड़ी होती है, ऐसी तरह-तरह की *अटकन* पड़ी होती है। अर्थात् इस तरह पैसों की *अटकन* पड़ी होती है, जब सुबह उठे तभी से पैसे का ध्यान रहा करता है। यह भी बड़ी *अटकन* कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन पैसे के बगैर चलता नहीं न!

दादाश्री : चलता नहीं, लेकिन पैसे आते किस तरह हैं, यह लोग जानते नहीं और पीछे दौड़ते रहते हैं। पैसे तो पसीने की तरह आते हैं। जैसे किसी को पसीना ज़्यादा आता है और किसी को कम आता है और जिस तरह पसीना आए बिना नहीं रहता, इसी प्रकार पैसे भी आते ही हैं लोगों के पास!

मुझे तो मूलतः पैसे की *अटकन* ही नहीं थी। बाईस साल का था तब से मैं व्यापार करता था और फिर भी मेरे घर आने वाले मेरे व्यापार की कोई भी बात नहीं जानते थे। बल्कि मैं ही उनसे पूछता रहता था कि 'आपको क्या अड़चन है?'

पैसे याद आना वह भी बहुत जोख़िम है, तब फिर पैसों की भक्ति करना कितना बड़ा जोखिम होगा?

मनुष्य एक जगह भक्ति कर सकता है या तो पैसों की भक्ति कर सकता है या फिर आत्मा की। एक व्यक्ति का दो जगह उपयोग नहीं रह सकता। दो जगह पर उपयोग कैसे रह पाएगा? एक ही जगह पर उपयोग रहेगा। अब क्या हो?

एक सेठजी मिले थे। यूँ तो लखपति थे, मुझ से पंद्रह साल बड़े, लेकिन मेरे साथ उठते-बैठते। उस सेठजी से मैंने एक दिन पूछा कि, 'सेठजी, आपके सभी बेटे कोट-पतलून पहनकर घूमते हैं और आप एक इतनी सी धोती, वह भी दोनों घुटने खुली दिखे ऐसा क्यों पहनते हो?' वह सेठ जी मंदिर दर्शन करने जाते थे तब ऐसे नंगे दिखते। इतनी सी धोती -लंगोटी पहनी हो वह ऐसी लगती थी। इतनी सी बंडी और सफेद टोपी, और भागते-दौड़ते दर्शन करने जाते। मैंने कहा कि, मुझे लगता है कि 'यह सब साथ लेकर जाओगे?' तब मुझ से कहा कि, 'नहीं ले जा सकते अंबालालभाई, साथ में नहीं ले जा सकते!' मैंने कहा, 'आप तो अक्लमंद, हम पाटीदारों में समझ कहाँ और आपकी तो अक्लमंद कौम, कुछ ढूँढ निकाला होगा!' तो कहने लगे कि, 'नहीं, कोई नहीं ले जा सकता।' फिर उनके बेटे से पूछा कि, 'पिताजी तो ऐसा कहते थे', तब उसने कहा कि, 'वह तो अच्छा है कि साथ नहीं ले जा सकते। यदि साथ ले जा सकते तो मेरे पिताजी तीन लाख का कर्ज़ा हमारे सिर छोड़कर जाएँ ऐसे हैं! मेरे पिताजी तो बहुत पक्के हैं। इसलिए नहीं ले जा सकते, यही अच्छा है, वर्ना पिताजी तो तीन लाख का कर्ज़ छोडकर हमें कहीं का नहीं रखते। मेरे पास तो पहनने को कोट-पतलून भी नहीं बचते। यदि साथ ले जा सकते न तो, हमारा तो काम तमाम कर दें, ऐसे पक्के हैं!'

प्रश्नकर्ता : मुंबई के सेठ दो नंबरी पैसे इकट्‌ठे करते हैं उसका क्या 'इफेक्ट' होगा?

दादाश्री : उससे कर्म का बंधन होता है। वह तो दो नंबरी या एक नंबरी हो, खरे-खोटे पैसे सभी कर्म के बंधन डालता है। कर्मबंधन तो वैसे भी होता है। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक कर्मबंधन

पड़ता है। और कुछ पूछना है? दो नंबरी पैसों से खराब कर्म बंधते हैं। इससे जानवर गति में जाना पड़ता है, पशुयोनि में जाना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : ये लोग पैसों के पीछे पड़े हैं तो संतोष क्यों नहीं रखते?

दादाश्री : हमसे कोई कहे कि संतोष रखना तब हम कहें कि भाई, आप क्यों नहीं रखते, और मुझे कह रहे हो? वस्तुस्थिति में संतोष रखने से रखा जा सके, ऐसा नहीं है। उसमें भी किसी के कहने से रह सके, ऐसा नहीं है। जितना ज्ञान होगा उस अनुसार अपने आप स्वाभाविक रूप से संतोष रहेगा ही। संतोष करने जैसी चीज़ नहीं है, वह तो परिणाम है। जैसी आपने परीक्षा दी होगी, वैसा परिणाम आएगा। इसी प्रकार जितना ज्ञान होगा उसके परिणाम स्वरूप उतना संतोष रहेगा। संतोष रहे, इसलिए तो ये लोग इतना परिश्रम करते हैं! देखो न, संडास में भी दो काम करते हैं, वहीं बैठे दाढी भी करते हैं! इतना अधिक लोभ होता है! यह तो सब इन्डियन पज़ल कहलाती है!

कई वकील तो संडास में बैठकर दाढी बनाते हैं और एक की पत्नी मुझ से कह रही थी कि हमारे साथ बात करने तक की फुरसत नहीं है वे कैसे एकांतिक हो चुके हैं। एक तरफा ही, एक ही कोना और फिर वह रेसकोर्स (घुड़दौड़) होती है न! जो लक्ष्मी आती है, वहाँ जाकर फेंक आते हैं वापस। लीजिए! यहाँ गाय को दुहकर वहाँ गधे को पिला देते हैं।

इस कलियुग में पैसों का लोभ करके खुद का जन्म बिगाड़ते हैं और मनुष्यपन में रौद्रध्यान और आर्तध्यान होते रहते हैं, इससे मनुष्यपन चला जाता है। बड़े बड़े राज भोगकर आए हैं। ये भिखारी जैसे नहीं थे, लेकिन अभी मन भिखारी जैसा हो गया है। इसलिए यह चाहिए और वह चाहिए, ऐसा होता रहता है। वर्ना जिसका मन संतुष्ट हो उसे कुछ भी नहीं दो, फिर भी राजश्री होता है। पैसा ऐसी चीज़ है कि मनुष्य को लोभ के प्रति दृष्टि कराता है। लक्ष्मी तो बैर बढ़ाने वाली चीज़ है। उससे जितना दूर रहा जा सके, उतना उत्तम

और यदि खर्च हो तो खर्च अच्छे काम में खर्च हो जाए तो अच्छी बात है।

पैसे तो जितने आने वाले होंगे उतने ही आएँगे। धर्म में पड़ेगा तो भी उतने ही आएँगे और अधर्म में पड़ेगा तो भी उतने ही आएँगे। लेकिन यदि अधर्म में पड़ेगा तो दुरुपयोग होगा और दुःखी होगा, और इस धर्म में सदुपयोग होगा और सुखी होगा और मोक्ष में जाया जा सकेगा वह अतिरिक्त। बाकी पैसे तो उतने ही आएँगे।

पैसों के लिए सोचना, यह एक बुरी आदत है, वह कैसी बुरी आदत है? कि एक आदमी को बहुत बुखार चढ़ा हो और आप उसे भाप देकर बुखार उतारते हो। भाप देने से पसीना बहुत हो जाता है, ऐसा फिर हररोज़ भाप देकर पसीना निकाले तो उसकी स्थिति क्या होगी? वह समझता है कि इस प्रकार एक दिन मुझे बहुत फायदा हुआ था, मेरा शरीर हल्का हो गया था, इसलिए अब यह रोज़ की आदत डाल देनी है। रोज़ाना भाप लें और फिर पसीना निकालता रहे तो क्या होगा?

लक्ष्मी तो बाइ प्रोडक्ट है। जैसे, अपना हाथ अच्छा रहेगा या पैर अच्छा रहेगा क्या उसके लिए रात-दिन सोचना पड़ता है? नहीं, क्यों? क्या हमें हाथ-पैर की ज़रूरत नहीं है? है, लेकिन उसके बारे में सोचना नहीं पड़ता। इस तरह लक्ष्मी के बारे में भी मत सोचना। जैसे कि यदि हमें हाथ दुःखे तब उसके इलाज करवाने जितना सोचना पड़ता है, ऐसे ही कभी सोचना पड़े तो उस समय तक के लिए ही, बाद में नहीं सोचना है, दूसरे झंझट में मत पड़ना। क्या लक्ष्मी के स्वतंत्र ध्यान में उतरना चाहिए? लक्ष्मी का स्वतंत्र ध्यान नहीं करते। लक्ष्मी का ध्यान एक ओर है तो दूसरी ओर दूसरा ध्यान चूक जाते हैं। स्वतंत्र ध्यान तो लक्ष्मी का ही नहीं बल्कि स्त्री का भी ध्यान नहीं करना चाहिए। स्त्री का ध्यान करोगे तो स्त्री जैसे हो जाओगे! लक्ष्मी के ध्यान में रहोगे तो चंचल हो जाओगे। लक्ष्मी चंचल और ध्यान करने वाला भी चंचल! लक्ष्मी तो सब जगह घूमती रहती है निंरतर, ऐसे वह भी खुद सब जगह घूमता रहता है। लक्ष्मी का ध्यान करना

ही नहीं चाहिए। वह तो बड़े से बड़ा रौद्रध्यान है, वह आर्तध्यान नहीं, रौद्रध्यान है! क्योंकि खुद के घर खाने-पीने का है, सबकुछ है, फिर भी और अधिक लक्ष्मी की आशा रखता है, अत: उतना दूसरे के यहाँ कम हो जाएगा। दूसरे के यहाँ कम हो, ऐसा प्रमाण भंग मत करो। वर्ना आप गुनहगार हो! अपने आप सहज आए उसके गुनहगार आप नहीं! सहज तो पाँच लाख आएँ या पचास लाख आएँ। लेकिन फिर आने के बाद लक्ष्मी को रोककर नहीं रखना चाहिए। लक्ष्मी तो क्या कहती है? हमें रोकना मत, जितनी आए उतनी दे दो।

धन के अंतराय कब तक? जब तक कमाने की इच्छा रहेगी तब तक। धन के प्रति दुर्लक्ष हुआ कि ढेरों आएगा।

क्या खाने की ज़रूरत नहीं है? संडास जाने की ज़रूरत नहीं है? वैसे ही लक्ष्मी की भी ज़रूरत है। जैसे संडास याद किए बिना होती है, वैसे ही लक्ष्मी भी याद किए बगैर आती है।

एक ज़मीनदार मेरे पास आया वह मुझ से पूछने लगा कि 'जीवन जीने के लिए कितना चाहिए? मेरे घर हज़ार बीघा ज़मीन है, बंगला है, दो कार है और बैंक बैलेन्स भी काफी है। तो मुझे कितना रखना चाहिए?'

मैंने कहा, 'देख भाई, किसी की ज़रूरत कितनी होनी चाहिए उसका अंदाज, उसके (खुद के) जन्म के समय कितनी समृद्धि थी, उस पर से तू सारी ज़िंदगी के लिए अपनी कक्षा निश्चित कर। वही दरअसल नियम है। यह तो सब एक्सेस में (अति) जाता है और एक्सेस तो ज़हर है, मर जाएगा!'

हर एक मनुष्य को अपने घर में ही आनंद आता है। झोंपड़े वाले को बंगले में आनंद नहीं आता और बंगले वाले को झोंपड़ी में आनंद नहीं आता। उसका कारण है, उसकी बुद्धि का आशय। जो बुद्धि के आशय में जैसा भरकर लाया होगा, वैसा ही उसे मिलता है। बुद्धि के आशय में जो भरा हो उसके दो फोटो खिंचते हैं : (1) पापफल और (2) पुण्यफल। बुद्धि के आशय का प्रत्येक ने विभाजन

किया, तब 100 प्रतिशत में से अधिकांश प्रतिशत मोटर, बंगला, बेटे-बेटियाँ और बहू, इन सबके लिए भरे। तो यह सब प्राप्त करने में पुण्य खर्च हो गया और धर्म के लिए मुश्किल से एक या दो प्रतिशत ही बुद्धि के आशय में भरे।

कोई यदि बुद्धि के आशय में ऐसा भरकर लाया है कि लक्ष्मी प्राप्त करनी है। उसमें उसके पुण्य का उपयोग होकर लक्ष्मी के ढेर लग जाते हैं। दूसरा (व्यक्ति) बुद्धि के आशय में ऐसा लेकर तो आया है कि लक्ष्मी प्राप्त करनी है, लेकिन उसमें पुण्य काम आने के बजाय पापफल सामने आया तो फिर लक्ष्मी जी मुँह ही नहीं दिखातीं। अरे! यह तो इतना स्पष्ट हिसाब है कि किसी का ज़रा-सा भी चले ऐसा नहीं है। तब ये अभागे ऐसा मान लेते हैं कि मैं दस लाख रुपये कमाया। अरे, यह तो पुण्य खर्च हुआ और वह भी उल्टी राह। इसके बजाय तेरा बुद्धि का आशय बदल। बुद्धि का आशय धर्म के लिए ही बाँधने योग्य है। ये जड़ वस्तुएँ मोटर, बंगला, रेडियो इन सबकी भजना करके इन्हीं के लिए बुद्धि का आशय, बाँधने योग्य नहीं है। धर्म के लिए ही, आत्मधर्म के लिए ही बुद्धि का आशय रखना। वर्तमान में आपको जो प्राप्त है वह भले ही हो, लेकिन अब तो आशय बदलकर केवल संपूर्ण शत-प्रतिशत धर्म के लिए ही रखना।

हम अपने बुद्धि के आशय में शत-प्रतिशत धर्म और जगत् कल्याण की भावना लेकर आए हैं। अन्य किसी जगह हमारा पुण्य खर्च हुआ ही नहीं। पैसे, मोटर, बंगले, बेटा, बेटी, कहीं भी नहीं।

हमसे जो-जो मिले और ज्ञान ले गए, उन्होंने दो-पाँच प्रतिशत धर्म के लिए-मुक्ति के लिए डाले थे, तभी हम (दादाजी) मिले। हमने शत-प्रतिशत धर्म में डाले, इसलिए सभी जगह से हमें धर्म के लिए 'नो ऑब्जेक्शन सर्टिफिकेट' मिला है।

कोई बाहर का व्यक्ति मेरे पास व्यवहार से सलाह लेने आए कि 'मैं भले ही कितनी भी माथापच्ची करूँ, लेकिन कुछ परिणाम नहीं निकलता।' तब मैं कहूँ, 'अभी तेरे पाप का उदय है। यदि किसी

से रुपये उधार लेकर भी आएगा तो रास्ते में तेरी जेब कट जाएगी। इसलिए अभी तू घर बैठकर आराम से तू जो भी शास्त्र पढ़ता हो, वह पढ़ और भगवान का नाम लेता रह।'

पाप का *पूरण* कर रहा है (बीज बोता है), उसका जब *गलन* होगा (फल आएगा) तब पता चलेगा! तब तेरे छक्के छूट जाएँगे! अंगारों पर बैठे हों ऐसा लगेगा! पुण्य का *पूरण* करेगा, तब पता चलेगा कि कुछ निराला ही आनंद आ रहा है! इसलिए जिसका भी *पूरण* करो वह सोच-समझकर करना, कि जब *गलन* होगा तब कैसा परिणाम आएगा! *पूरण* करते समय लगातार चौकन्ने रहना, पाप करते समय, किसी को छलकर पैसे जमा करते समय, लगातार ध्यान रखना कि उसका भी *गलन* होने वाला है। वह पैसा बैंक में रखोगे, तब भी वह जाने वाला तो है ही। उसका भी *गलन* तो होगा ही। और वह पैसा जमा करते समय जो पाप किया, जो रौद्रध्यान किया, वह उसकी धाराओं सहित साथ में आएगा वह अलग से और जब उसका *गलन* होगा, तब तेरी क्या हालत होगी?

कुदरत क्या कहती है? उसने कितने रुपये खर्च किए वह हमारे यहाँ देखा नहीं जाता। यहाँ तो, वेदनीय कर्म क्या भुगता? *शाता* (सुख परिणाम) या *अशाता,* उतना ही हमारे यहाँ देखा जाता है। रुपये नहीं होंगे, फिर भी *शाता* भोगेगा और रुपये होंगे फिर भी *अशाता* भुगतेगा। अर्थात् वह जो *शाता* या *अशाता* वेदनीय कर्म भुगतता है, वह रुपयों पर आधारित नहीं है।

अभी आपकी थोड़ी आमदनी हो, बिल्कुल शांति हो, कुछ झंझट नहीं हो, तब कहना कि 'चलो, भगवान के दर्शन कर आएँ!' और ये सारे, जो पैसे कमाने में रहे, वे ग्यारह लाख कमाएँ, उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन अभी पचास हज़ार का घाटा होने लगे तो *अशाता* वेदनीय उत्पन्न हो जाएगी! 'अरे, ग्यारह लाख में से पचास हज़ार कम कर दे न!' तब कहेगा कि 'नहीं, उससे तो उसमें रकम घट जाएगी न!' तब, रकम तू किसे कहता है? कहाँ से आई यह रकम? वह तो ज़िम्मेदारी वाली रकम थी, अतः कम हो जाए तो चिल्लाना मत। जब रकम बढ़े,

तब तू खुश होता है और कम हो तब? अरे, सच्ची पूँजी तो 'भीतर' बैठी है, हार्ट 'फेल' करके उस सारी पूँजी को बरबाद करना चाहता है! हार्ट 'फेल' करे, तो सारी पूँजी खत्म हो जाएगी या नहीं?

दस लाख रुपये बाप ने बेटे को दिए हों और बाप कहेगा कि 'अब मैं आध्यात्मिक जीवन जीऊँगा!' तो अब वह लड़का रोज़ाना शराब में, मांसाहार में, शेयर बाज़ार में, आदि में वह पैसा गँवा देता है। क्योंकि जो पैसे गलत रास्तों से जमा हुए हैं, वे खुद के पास नहीं रहते। आज तो खरा धन भी, खरी मेहनत की कमाई भी नहीं रहती, फिर खोटा धन कैसे रहेगा? अर्थात् पुण्य का धन चाहिए, जिसमें अप्रामाणिकता नहीं हो, नियत साफ़ हो। ऐसा धन होगा तो वही सुख देगा। वर्ना अभी दुषमकाल का धन, वह भी पुण्य का ही कहलाता है, लेकिन पापानुबंधी पुण्य का, जो निरे पाप ही बंधवाता है!

एक मिनट भी रह न पाएँ, ऐसा यह संसार है! ज़बरदस्त पुण्य होने के बावजूद भी भीतर अंतरदाह शांत नहीं होता; अंतरदाह निरंतर जलता ही रहता है! चारों ओर से सभी फर्स्ट क्लास संयोग होंगे फिर भी अंतरदाह जारी रहता है, वह अब कैसे मिटे? पुण्य भी आखिर खत्म हो जाता है। दुनिया का कानून है कि पुण्य खत्म हो तब क्या होता है? पाप का उदय होता है। यह तो अंतरदाह है। पाप के उदय के समय, जब बाहर का दाह पैदा होगा उस समय तेरी क्या दशा होगी? इसलिए सचेत हो जाओ, ऐसा भगवान कहते हैं।

यह तो *पूरण-गलन* स्वभाव का है। जितना *पूरण* हुआ उतना फिर *गलन* होने वाला है। और *गलन* नहीं होता न, तो भी मुसीबत हो जाती। लेकिन जितना *गलन* होता है, तब उतना ही फिर खाया जाता है। यह साँस ली वह *पूरण* किया और उच्छ्वास निकाला वह *गलन* है। सब *पूरण-गलन* स्वभाव का है, इसलिए हमने खोजबीन की है कि 'तंगी नहीं और भराव भी नहीं! हमारे यहाँ कभी भी लक्ष्मी की तंगी भी नहीं और भराव भी नहीं!' तंगी वाला सूख जाता है और भराव वाले को सूजन चढ़ जाती है। भराव यानी क्या? कि लक्ष्मी जी

दो-तीन साल तक खिसके ही नहीं। लक्ष्मी जी तो चलती भली, वर्ना दुःखदायी हो जाती हैं।

मेरे यहाँ कभी भी तंगी नहीं आई और न ही भराव हुआ। लाख आने से पहले तो कहीं न कहीं से बम आ जाता है और वे खर्च हो जाते हैं। इसलिए भराव तो होता ही नहीं कभी भी, और तंगी भी नहीं आई।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी क्यों कम हो जाती है?

दादाश्री : चोरियों से। जहाँ मन-वचन-काया से चोरी नहीं होती, वहाँ लक्ष्मी जी कृपा करती है। लक्ष्मी का अंतराय चोरी से है। ट्रिक (चालाकी) और लक्ष्मी में बैर है। स्थूल चोरी बंद होती है, तब जाकर ऊँची ज्ञाति में जन्म होता है। लेकिन सूक्ष्म चोरी अर्थात् ट्रिक करें, तो वह तो हार्ड (भारी) रौद्रध्यान है और उसका फल नर्कगति है। कपड़ा खींचकर नापते हैं, वह हार्ड रौद्रध्यान है। ट्रिकें तो होनी ही नहीं चाहिए। ट्रिकें करना किसे कहते हैं? 'बहुत चोखा माल है' कहकर मिलावट वाला माल देकर खुश होता है। और अगर हम कहें कि, ऐसा तो किया जाता होगा भला? तब वह कहेगा कि, 'वह तो ऐसा ही करना पड़ता है।' लेकिन ईमानदारी की इच्छा वाले को क्या कहना चाहिए कि 'मेरी इच्छा तो अच्छा माल देने की है, लेकिन यह माल ऐसा है, वह ले जाओ।' इतना कह दिया तो भी ज़िम्मेदारी अपनी नहीं रहेगी!

ये सभी लोग कब तक ईमानदार हैं? कि जब तक कालेबाज़ार का अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं हुआ।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी कितनी मात्रा में कमानी चाहिए?

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं। सुबह रोज़ाना नहाना पड़ता है न? तब क्या कोई सोचता है कि एक लोटा (पानी) ही मिलेगा तो क्या करूँगा? इसी तरह लक्ष्मी का विचार नहीं आना चाहिए। डेढ़ बालटी मिलेगी उतना निश्चित ही है और दो लोटे, वह भी निश्चित ही है। उसमें कोई कम-ज़्यादा नहीं कर सकता। इसलिए मन-वचन-काया से

लक्ष्मी के लिए तू प्रयत्न करना लेकिन, इच्छा मत करना, यह लक्ष्मी जी तो बैंक-बैलेन्स है, अत: बैंक में जमा होगी, तभी मिलेगी न? कोई लक्ष्मी की इच्छा करे, तब लक्ष्मी जी कहती हैं कि 'इस जुलाई में तेरे पैसे आने वाले थे, लेकिन अब वे अगली जुलाई में मिलेंगे।' और यदि कहे कि, 'मुझे पैसे नहीं चाहिए' तो वह भी बड़ा गुनाह है। लक्ष्मी जी का तिरस्कार भी नहीं और इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। उन्हें तो नमस्कार करना चाहिए। उनका तो विनय करना चाहिए, क्योंकि वह तो हेड ऑफिस में है। लक्ष्मी जी तो जब उसका, काल परिक्व होगा तब आएँगी ही। यह तो, इच्छा से अंतराय पड़ता है। लक्ष्मी जी कहती हैं कि, 'जिस टाइम पर जिस मोहल्ले में रहना हो उस टाइम पर ही रहना चाहिए, और हम टाइम-टाइम पर भिजवा ही देते हैं। तेरे हरएक ड्राफ्ट आदि सभी टाइम पर आ जाएँगे, लेकिन मेरी इच्छा मत करना। क्योंकि जितना नियम से हैं, वह ब्याज समेत भेज देते हैं। जो इच्छा नहीं करता उसे समय पर भेजते हैं।' दूसरा, लक्ष्मी जी क्या कहती है? कि, 'तुझे मोक्ष में जाना हो तो हक़ की लक्ष्मी मिले वही लेना, किसी का भी ऐंठ कर, छल कर, मत लेना।'

लक्ष्मी जी जब हमें मिलती हैं, तब हम उन्हें कह देते हैं कि 'बड़ौदा में 'मामा की पोल' (मुहल्ला) और छठवाँ घर, जब अनुकूलता हो तब पधारना और जब जाना हो चले जाना। आपका ही घर है, पधारना।' इतना हम कहते हैं। हम विनय नहीं चूकते।

दूसरी बात, लक्ष्मी जी को दुत्कारना नहीं चाहिए। कई लोग ऐसा कहते हैं कि, 'हमें नहीं चाहिए, लक्ष्मी जी को तो हम टच (छूना) भी नहीं करते', वे लक्ष्मी जी को नहीं छुए उसमें हर्ज नहीं, लेकिन ऐसा जो वाणी से बोलते हैं न, ऐसा जो भाव करते हैं वह जोखिम है। अगले कई जन्मों तक लक्ष्मी जी के बगैर भटकना पड़ेगा। लक्ष्मी जी तो 'वीतराग' है, 'अचेतन वस्तु है'। उसे दुत्कारना नहीं चाहिए। किसी को भी दुत्कार कर, चाहे वह चेतन हो या अचेतन हो फिर उसका संयोग प्राप्त नहीं होगा। हम 'अपरिग्रही हैं' ऐसा बोले, लेकिन 'लक्ष्मी जी को कभी भी नहीं छूऊँगा' ऐसा नहीं बोलना चाहिए।

लक्ष्मी जी तो सारी दुनिया के व्यवहार की 'नाक' कहलाती हैं। 'व्यवस्थित' के नियम के आधार पर सभी देवी-देवता प्रस्थापित हैं, इसलिए कभी भी *तरछोड़* (तिरस्कार सहित दुत्कारना) नहीं करना चाहिए।

लक्ष्मी का त्याग नहीं करना है, लेकिन अज्ञानता का त्याग करना है। कुछ लोग लक्ष्मी का तिरस्कार करते हैं। यदि किसी भी वस्तु का तिरस्कार करें तो वह कभी भी फिर मिलेगी ही नहीं, सिर्फ निःस्पृह हो जाना, वह तो बहुत बड़ा पागलपन है।

संसारी भावों में हम निःस्पृही हैं और आत्मा के भावों में सस्पृही हैं। सस्पृही-निःस्पृही होगा तभी मोक्ष में जा पाएगा। इसलिए हर प्रसंग का स्वागत करना।

काला धन कैसा होता है, वह समझाता हूँ। बाढ़ का पानी अपने घर में घुस जाए तो क्या हमें खुशी होगी कि घर बैठे पानी आया? फिर जब वह बाढ़ उतरेगी, तब पानी तो चला जाएगा, लेकिन बाद में जो कीचड़ रह जाएगा, उस कीचड़ को धोकर निकालते निकालते तो तेरा दम निकल जाएगा। यह काला धन बाढ़ के पानी जैसा है। वह रोम-रोम में काटकर जाएगा। इसलिए मुझे सेठों से कहना पड़ा कि सँभलकर चलना।

जब तक उल्टा व्यापार शुरू नहीं होता, तब तक लक्ष्मी जी जाएँगी नहीं। उल्टा व्यापार लक्ष्मी के जाने का निमित्त है!

यह काल कैसा है? अभी इस काल के लोगों को तो, कहाँ से माल मिल जाए, दूसरों से कैसे झपट लूँ, किस तरह मिलावट वाला माल दूसरों को देना, बिना हक़ के विषय भोगना, उसमें से फुरसत मिले तो और कुछ खोजेंगे न? इससे सुख में कोई वृद्धि नहीं हुई है। सुख तो कब कहलाएगा? मेन प्रोडक्शन करेगा तब। यह संसार तो बाय प्रोडक्ट है, पूर्व में कुछ किया होगा उससे देह मिली। भौतिक चीज़ें मिली, स्त्री मिली, बंगले मिले। यदि मेहनत से मिलता तो मज़दूर को भी मिलता, लेकिन ऐसा नहीं है। आज के लोगों की समझ में फर्क आया है। इसीलिए ये बाय प्रोडक्शन के कारखाने निकाले हैं।

लेकिन बाय प्रोडक्शन के नहीं निकालने चाहिए। मेन प्रोडक्शन यानी मोक्ष का साधन 'ज्ञानी पुरुष' से प्राप्त कर लो, फिर संसार का बाय प्रोडक्शन तो अपने आप मुफ्त में ही मिलेगा! बाय प्रोडक्ट के लिए तो अनंत जन्म बिगाड़े, दुर्ध्यान करके! एक बार मोक्ष प्राप्त कर लो तो सारा फसाद समाप्त हो जाए!

इस भौतिक सुख के बजाय अलौकिक सुख होना चाहिए कि जिस सुख से हमें तृप्ति हो। यह लौकिक सुख तो उल्टे बेचैनी बढ़ाता है! जिस दिन पचास हज़ार का गल्ला हो उस दिन गिन-गिनकर ही सारा दिमाग़ खत्म हो जाता है। दिमाग़ तो इतना व्याकुल हो गया हो कि खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता। क्योंकि मेरे यहाँ गल्ला भरता था, वह मैंने देखा था, तब यह दिमाग़ कैसा हो जाता था! यह कुछ भी मेरे अनुभव से बाहर नहीं है न? मैं तो यह समुद्र तैरकर बाहर निकला हूँ, इसलिए मुझे सब मालूम है कि आपको क्या होता होगा? अधिक रुपये आते हैं, तब अधिक व्याकुलता होती है। दिमाग़ डल (मंद) हो जाता है और कुछ भी याद नहीं रहता। बेचैनी, बेचैनी और बेचैनी ही रहा करती है। नोट ही गिनता रहता है, लेकिन वे नोट यहीं के यहीं रह गए और गिनने वाले चल बसे! पैसा तो कहता है कि, 'तू समझ सके तो समझ लेना, हम रहेंगे और तू जाएगा!' इसलिए हमें उसके साथ कोई बैर नहीं बाँधना है। पैसे से कहना कि, 'आइए जी,' क्योंकि उसकी ज़रूरत है! सभी की ज़रूरत तो है न? लेकिन अगर उसके पीछे तन्मयाकार रहें, तो गिनने वाले चले गए और पैसे रह गए। फिर भी गिनने तो पड़ते हैं, उससे भी बच नहीं सकते न! शायद ही कोई सेठ ऐसा होगा जो मुनीम से कहे कि, 'भाई, मुझे तो खाते समय परेशान मत करना, आप पैसे आएँ तो आराम से गिनकर तिजोरी में रख देना और तिजोरी में से ले लेना।' उसमें दख़ल नहीं करे, ऐसा शायद ही कोई सेठ होगा! हिन्दुस्तान में ऐसे दो-चार सेठ होंगे, जो निर्लेप रह सकें! मुझ जैसे! मैं कभी पैसे नहीं गिनता! यह क्या बखेड़ा! आज बीस-बीस सालों से मैंने लक्ष्मी जी को हाथ में नहीं लिया है, तभी इतना आनंद रहता है न!

जब तक व्यवहार है, तब तक लक्ष्मी जी की ज़रूरत रहेगी ही, उसके लिए मनाही नहीं है। लेकिन उसमें तन्मयाकार मत होना, तन्मयाकार तो नारायण में होना। सिर्फ लक्ष्मी जी के पीछे पड़ोगे तो नारायण चिढ़ जाएँगे। लक्ष्मी-नारायण का तो मंदिर है न! लक्ष्मी जी कोई ऐसी-वैसी चीज़ है?

रुपये कमाते समय जो आनंद होता है वैसा ही आनंद खर्च करते समय होना ही चाहिए। लेकिन तब तो बोल उठता है, 'इतने सारे खर्च हो गए!'

पैसे खर्च हो जाएँगे ऐसी जागृति रखनी ही नहीं चाहिए। जिस समय जो हो वह सही। इसीलिए खर्च करने को कहा है, ताकि लोभ छूटे और बार-बार दे पाएँ।

भगवान ने कहा कि हिसाब लगाना नहीं। भविष्यकाल का ज्ञान हो तो हिसाब लगाना। अरे, हिसाब लगाना हो तो कल मर जाऊँगा, ऐसा हिसाब लगा न?

रुपयों का नियम ऐसा है कि कुछ दिन टिकेंगे और फिर चले जाएँगे। जाएँगे और जाएँगे ही। वह रुपया घूमता ज़रूर है, फिर वह नफा लेकर आए, घाटा लेकर आए या ब्याज लेकर आए, लेकिन घूमेगा ज़रूर। वह बैठा नहीं रहता, वह स्वभाव से ही चंचल है। अतः जब ऊपर चढ़े (धनवान हुआ), तब फिर वहाँ उसे फँसाव लगता है। उतरते समय उतर नहीं पाता। चढ़ते समय तो जोश में चढ़ जाता है। चढ़ते समय तो ऐसे पकड़-पकड़कर जोश में चढ़ जाता है, लेकिन उतरते समय तो जैसे बिल्ली मटकी में मुँह डालती है, ज़ोर लगाकर डालती है और फिर निकालते समय कैसा होता है? वैसा हो जाता है।

यह अनाज तीन-पाँच साल में निर्जीव हो जाता है, फिर नहीं उगता।

पहले लक्ष्मी पाँच पीढ़ियों तक टिकती थी, तीन पीढ़ियों तक तो टिकती ही थीं। यह तो अब एक पीढ़ी भी नहीं टिकती। यह लक्ष्मी

ऐसी है? कि एक पीढ़ी भी नहीं टिकती। उसके जीवन में ही आती है और उसके जीवन में ही चली जाती है, ऐसी यह लक्ष्मी है। यह तो पापानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी है। उसमें थोड़ी बहुत पुण्यानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी हो वह आपको यहाँ (दादाजी के पास) आने की प्रेरणा देती है, यहाँ मिलवा देती है और आपसे यहाँ खर्च करवाती है। अच्छे मार्ग में लक्ष्मी खर्च होती है। वर्ना यह तो धूल में मिल जाएगा। सब गटर में ही चला जाएगा। ये बच्चे अपनी ही लक्ष्मी भोगते हैं न, जब हम उनसे कहें कि तुने मेरी लक्ष्मी खर्च की। तब वे कहेंगे, 'आपकी कहाँ? हम हमारी ही भोग रहे हैं।' ऐसा कहेंगे। अर्थात् गटर में ही गया न सब!

इस दुनिया को यथार्थ – 'जैसी है वैसी', समझें तो जीवन जीने जैसा है, यथार्थ समझें तो संसारी चिंता और *उपाधि* नहीं होंगे। तब फिर जीने जैसा लगेगा!

[2] लक्ष्मी से संबंधित व्यवहार

क्या किया हो तो अमीरी आएगी? लोगों की अनेकों प्रकार से हैल्प (मदद) की होगी, तब लक्ष्मी अपने यहाँ आएगी! वर्ना लक्ष्मी नहीं आएगी। लक्ष्मी तो देने की इच्छा वाले के यहाँ ही आती है। जो नुकसान उठाता है, ठगा जाता है, नोबिलिटी रखता है, वहाँ लक्ष्मी आती हैं। चली गई है ऐसा लगता है, लेकिन फिर वहीं आकर खड़ी रहती हैं।

पैसे कमाने के लिए पुण्य की आवश्यकता है। बुद्धि से तो बल्कि पाप बंधते हैं। बुद्धि से पैसे कमाने जाओगे तो पाप बंधेंगे। मेरे पास बुद्धि नहीं है इसलिए पाप नहीं बंधते। हमारे में (दादाश्री) एक परसेन्ट भी बुद्धि नहीं है!

मेरा स्वभाव दयालु, भाव प्रधान! वसूली करने जाऊँ तो भी देकर आता! वैसे उगाही करने तो जाता ही नहीं था कभी। कभी उगाही करने जाता और उसे कोई तंगी होती तो उल्टे देकर आता। मेरी जेब में अगले दिन खर्च करने के जो होते, वे भी देकर आ

जाता! फिर अगले दिन के खर्च के लिए परेशान होता था! इस तरह मेरा जीवन व्यतीत हुआ है।

प्रश्नकर्ता : अधिक पैसा होता है तो मोह हो जाता है, ऐसा है? अधिक पैसे होना, वह शराब के समान ही है न?

दादाश्री : हर चीज़ का कैफ़ चढ़ता है। यदि कैफ़ नहीं चढ़े तो पैसे अधिक हों, फिर भी हर्ज नहीं। लेकिन कैफ़ चढ़ा तो शराबी हो गया, फिर उसी खुमारी में रहते हैं लोग! लोगों का तिरस्कार करता है, 'यह गरीब है, ऐसा है।' आया बड़ा श्रीमंत, लोगों को गरीब कहने वाला! खुद अमीर! व्यक्ति को गरीबी कब आएगी, यह कह नहीं सकते। आप कहते हैं ऐसा ही। बहुत कैफ़ चढ़ जाता है।

पूरी ज़िंदगी संसार के लोग पैसों के पीछे लगे रहते हैं और पैसों से तृप्त हुआ हो, ऐसा कोई मनुष्य मैंने कहीं देखा नहीं हैं। तो गया कहाँ यह सब?

अर्थात् यह सब ऐसे गप्प ही चल रही है। धर्म के नाम पर एक अक्षर भी समझते नहीं और सब चलता रहता है। इसलिए जब मुसीबत आए, तब क्या करना वह उसे नहीं आता। डॉलर (पैसा) आने लगे तब उछलकूद करता है। लेकिन फिर जब परेशानी आए तब उसका निपटारा कैसे करना, यह नहीं आता इसलिए निरे पाप ही बाँध देता है। उस समय पाप न बंधे और टाइम गुज़ार दे, उतना समझे तो वही धर्म है।

अर्थात् हमेशा ही सूर्योदय होगा और सूर्यास्त होगा, ऐसा संसार का नियम है। इससे कर्म के उदय से पैसे बढ़ते ही जाते हैं, अपने आप। हर ओर से, गाड़ियाँ-वाड़ियाँ, मकान बढ़ते जाते हैं। सब बढ़ता जाता है। लेकिन जब चेन्ज होता है, फिर बिखरता जाता है। पहले जमा होता रहता है फिर बिखरता रहता है। बिखरते समय शांति रखे, यही सब से बड़ा पुरूषार्थ!

सगा भाई पचास हज़ार डॉलर नहीं लौटाए, फिर वहाँ जीवन

कैसे जीयें, वह पुरुषार्थ है। सगे भाई ने पचास हज़ार डॉलर नहीं दिए और ऊपर से गालियाँ दे, तब जीवन कैसे जीना, वह पुरूषार्थ है।

जब कोई नौकर ऑफिस में से दस हज़ार का माल चुरा ले जाए, वहाँ कैसे बरतना वह पुरूषार्थ है। वर्ना ऐसे समय में नासमझी से सारा जन्म बिगाड़ देते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह तो आप्तवाणी में कहा ही गया है कि, 'तू यदि हज़ार-दो हज़ार रुपये किसी को देता है, तो वह क्यों देता है? वह तू अपने अहंकार और मान के खातिर देता है।

दादाश्री : मान बेचा उसने। 'अहंकार' बेचा तो हमें ले लेना चाहिए। खरीद लेना चाहिए। मैं तो सारी ज़िंदगी खरीदता आया हूँ। 'अहंकार' खरीदना।

प्रश्नकर्ता : इसका क्या अर्थ है दादा?

दादाश्री : आपके पास पाँच हज़ार लेने आया, उसकी आँख में क्या शरमिंदगी नहीं होगी?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वह माँगे तब शरम छोड़कर, 'अहंकार' बेचता है हमें। तो हमें खरीद लेना चाहिए। यदि हमारे पास पूँजी हो तो!

पैसे माँगने जाना अच्छा लगता है? सगे चाचा से माँगना अच्छा लगता है? क्यों अच्छा नहीं लगता? अरे, संबंधी से लेना भी किसी को अच्छा नहीं लगता। बाप से भी लेना अच्छा नहीं लगता। हाथ पसारना अच्छा नहीं लगता।

प्रश्नकर्ता : उसका अहंकार खरीद लिया, लेकिन हमें उसका अहंकार क्या काम आएगा?

दादाश्री : ओहोहो! उसका अहंकार खरीद लिया यानी उसमें जो शक्तियाँ है अपने में प्रकट हुई! वह अहंकार बेचने आया बेचारा!

प्रश्नकर्ता : हाथ-पैर सलामत हों, फिर भी यदि भीख माँगे तो उसे दान देने से इन्कार करना गुनाह है?

दादाश्री : दान नहीं देते, उसमें हर्ज नहीं लेकिन यदि उसे ऐसा कहें कि 'यह हट्टा-कट्टा भैंसे जैसा होकर ऐसा क्यों करता है?' ऐसा आपको नहीं ही कहना चाहिए। आप कहना कि 'भाई, मैं दे पाऊँ ऐसा नहीं है।'

सामने वाले को दुःख हो ऐसा हमें नहीं ही बोलना चाहिए। वाणी ऐसी अच्छी रखना कि सामने वाले को सुख हो। वाणी तो सब से बड़ा धन है आपके पास। वह धन तो टिके या नहीं भी टिके, लेकिन वाणी-धन तो सदा के लिए टिकेगा। आप अच्छे शब्द बोलोगे तो सामने वाले को आनंद होगा। आप उसे पैसे नहीं दो तो हर्ज नहीं लेकिन अच्छे शब्द बोलना न!

यहाँ बड़ा बंगला बनाओगे तो आप जगत् के भिखारी बनोगे। छोटा घर, तो जगत् के आप राजा! क्योंकि यह *पुद्गल* (अहंकार) है, यदि *पुद्गल* बढ़े तो आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) हल्का हो जाता है। और *पुद्गल* घटे तो आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) भारी हो जाता है। अतः ये जो संसार के दुःख हैं, वे आत्मा का विटामिन हैं। ये जो दुःख हैं, वे आत्मा का विटामिन हैं और जो सुख हैं, वे देह का विटामिन हैं।

रुपयों का स्वभाव हमेशा से कैसा है? चंचल, इसलिए दुरुपयोग नहीं हो उस तरह आप उसका सदुपयोग करना। उसे स्थिर मत रखना। संपति के प्रकार कितने हैं? तब कहें, स्थावर (अचल) और जंगम (चल)। जंगम यानी ये डॉलर आदि, और स्थावर यानी ये मकान आदि! लेकिन उनमें भी यह स्थावर अधिक टिकेगी। और जंगम यानी नकद डॉलर आदि, वे तो चले ही समझो न! अर्थात् नकद का स्वभाव कैसा? दस साल से आगे ग्यारहवें साल तक नहीं टिकते। फिर सोने का स्वभाव चालीस-पचास साल टिकने का है, और स्थावर मिल्कियत का स्वभाव है, सौ साल टिकने का। अर्थात् मुदतें सभी अलग-अलग होती हैं,

लेकिन आखिर में तो सभी जाने वाला ही है। अत: यह सब समझकर करना चाहिए। ये वणिक पहले क्या करते थे? नकद पच्चीस प्रतिशत व्यापार में, पच्चीस प्रतिशत ब्याज पर रखते थे, पच्चीस प्रतिशत सोने में और पच्चीस प्रतिशत मकान में लगाते थे। इस प्रकार पूँजी की व्यवस्था करते थे। बड़े पक्के लोग! अभी तो बेटे को ऐसा कुछ सिखाया भी नहीं जाता! क्योंकि अब पूँजी ही नहीं रही उतनी, तो क्या सिखाएँ?

इन पैसों का काम ऐसा है कि हमेशा ग्यारहवें साल में उसका नाश हो जाता है। दस साल तक चलते हैं। यह बात सच्चे पैसे की है, समझ में आया न? खोटे पैसों की तो बात ही अलग है! सच्चे पैसे ग्यारहवें साल तक खत्म हो जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : शेयर बाज़ार में सट्टेबाजी करना अच्छा या सोना खरीदना?

दादाश्री : शेयर बाज़ार में तो जाना ही नहीं चाहिए। शेयर बाज़ार में तो खिलाड़ी का काम है। बीच वाले लोग तो भुन जाते हैं! खिलाड़ी लोगों को मज़ा आ जाता है इसमें। पाँच-सात खिलाड़ी मिलकर भाव तय कर देते हैं। उसमें ये बीच वाले लोग मर जाते हैं! इसमें किसी को तो फायदा होता है न! इसमें बड़े खिलाड़ियों को लाभ होता है क्योंकि वे तो रात-दिन यही करते हैं न! ये बीच वाले जो इधर से कमाकर उधर डालते हैं, वे मारे जाते हैं। और छोटे लोग जो है वे बेचारे मुश्किल से अपना खर्च निकालते हैं। इसलिए जब मेरे एक रिश्तेदार ने मुझ से पूछा तब मैंने उनसे कहा कि यह मत करना।

प्रश्नकर्ता : दादाजी अपने अमरीका के महात्मा पूछते हैं कि हमने जो कुछ थोड़ा-बहुत कमाया है उसे लेकर इन्डिया चले जाएँ? विशेष रूप से बच्चों के बारे में सोचते हैं कि अमरीका में अच्छे संस्कार नहीं मिलते।

दादाश्री : हाँ, यह सब तो ठीक है। यहाँ यदि पैसे कमा लिए हो तो अपने घर इन्डिया चले जाना। बच्चों को अच्छी तरह पढ़ाना।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि कमा लिया हो तो चले जाना, लेकिन पैसों की कोई लिमिट नहीं होती, इसलिए आप कोई लिमिट बताइए। आप कोई ऐसी लिमिट बताइए कि उतना पैसा लेकर हम इन्डिया चले जाएँ।

दादाश्री : हाँ, आपको हिन्दुस्तान में कोई रोजगार करना हो तो उसके लिए जो रकम चाहिए, वह ब्याज पर नहीं लानी पड़े ऐसा करना। थोड़ा बहुत बैंक से लेना पड़े तो ठीक है। बाकी कोई उधार नहीं देता, वहाँ तो कोई उधार नहीं देता है। यहाँ (अमरीका में) भी कोई उधार नहीं देता। बैंक ही उधार देता है। यानी उतना साथ में रखना। बिज़नेस तो करना ही पड़ेगा न! वहाँ पर खर्च निकालना पड़ेगा न? लेकिन वहाँ बच्चे बहुत अच्छे हो जाएँगे। यहाँ पर डॉलर मिलते हैं, लेकिन बच्चों के संस्कार की परेशानी है न!

अमरीका में हमें स्टोर में ले जाते हैं। कहते हैं, चलिए दादाजी। तब स्टोर बेचारा हमारे पैर छूता रहता है कि धन्य है! ज़रा भी नज़र नहीं बिगाड़ी हम पर! पूरे स्टोर में कहीं पर भी दृष्टि बिगाड़ी ही नहीं। हमारी दृष्टि बिगड़े ही नहीं न उन पर। हम देखते ज़रूर हैं, लेकिन दृष्टि नहीं बिगड़ती। हमें क्या ज़रूरत किसी चीज़ की! मुझे कोई चीज़ काम नहीं आती न! तुम्हारी दृष्टि बिगड़ जाती है न?

प्रश्नकर्ता : ज़रूरत हो वह चीज़ लेनी पड़ती है।

दादाश्री : हाँ, हमारी दृष्टि बिगड़ती नहीं! स्टोर हमें ऐसे नमस्कार करता रहता है कि ऐसे पुरुष देखे नहीं कभी! और तिरस्कार भी नहीं। फर्स्ट क्लास। राग भी नहीं, द्वेष भी नहीं। क्या कहा? वीतराग! आए वीतराग भगवान!

एक महात्मा ने पूछा कि 'शेयर बाज़ार का काम मैं जारी रखूँ या बंद कर दूँ?' मैंने कहा, 'बंद कर देना।' आज तक जो किया उतना धन वापस खींच लो। अब बंद कर देना चाहिए। वर्ना अमरीका में आना, न आने के बराबर हो जाएगा! जैसे थे वैसे, कोरी पाटी लेकर घर जाना पड़ेगा।

ब्याज का व्यापार करने वाला मनुष्य, मनुष्य में से मिटकर क्या बन जाता है, वह भगवान ही जाने! आप बैंक में रखे तो उसमें हर्ज नहीं है, अन्य किसी को उधार दो तो उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन लालच में पड़ा व्यक्ति, दो प्रतिशत, डेढ़ प्रतिशत, सवा प्रतिशत, ढाई प्रतिशत, वह लालच में पड़ा है। उसका क्या होगा वह नहीं कह सकते। अभी मुंबई में सब को ऐसा हो गया है।

ब्याज लेने में हर्ज नहीं है। लेकिन यह तो ब्याज लेने का व्यापार शुरू कर दिया, व्यापार, ब्याज खाने का। आपको क्या करना चाहिए? जिसे उधार दिया हो उसे कहना कि जितना बैंक का ब्याज होता है, उतना आपको मुझे देना पड़ेगा। लेकिन फिर यदि किसी के पास ब्याज भी नहीं है, मूल धन भी नहीं है तो वहाँ पर मौन रहना। उसे दुःख हो ऐसा वर्तन (बर्ताब) मत करना। अर्थात् अपने पैसे डूब गए, ऐसा मानकर चला लेना। समुद्र में गिर जाएँ, तो उसका क्या करते हैं?

प्रश्नकर्ता : यदि सरकार अबव नॉर्मल टैक्स डाले तब नॉर्मेलिटी लाने हेतु, लोग टैक्स की चोरियाँ करें, तो उसमें क्या गलत है?

दादाश्री : लोभी व्यक्ति का लोभ कम करने हेतु टैक्स बहुत अच्छी चीज़ है।

लोभी व्यक्ति मरते दम तक, पाँच करोड़ पास में हों, फिर भी वह संतुष्ट नहीं होता। तब फिर ऐसा दंड मिले न बार-बार तो वह पीछे हटेगा, अतः यह तो अच्छी चीज़ है। इन्कमटैक्स तो किसे कहेंगे? यदि पंद्रह हज़ार से अधिक ले रहा हो तो। पंद्रह हज़ार वालों तक तो वे छोड़ देते हैं बेचारे, फिर वे पंद्रह हज़ार में एक परिवार को रौब से खाने-पीने में दिक्कत नहीं होती छोटे परिवारों को! छोटे परिवारों पर भी अफ्रीका में बहुत टैक्स नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : भगवान की भक्ति करने वाले गरीब क्यों होते हैं और दुःखी क्यों होते हैं?

दादाश्री : भक्ति करने वाले? ऐसा है न, भक्ति करने वाले

दुःखी होते हैं ऐसा कुछ है नहीं, लेकिन कुछ लोग आपको दुःखी नज़र आते हैं। बाकी भक्ति करने की वजह से ही इन लोगों के पास बंगले हैं। अर्थात् भगवान की भक्ति करते-करते मनुष्य दुःखी हो ऐसा नहीं होता, लेकिन यह दुःख तो उसका पिछला हिसाब है। और अभी जो भक्ति कर रहा है यह नया हिसाब है। उसका तो जब फल आएगा, तब। आपकी समझ में आया? जो पीछे जमा किया था उसका फल आज आया है। अब अभी जो यह कर रहा है, जो अच्छा कर रहा है, उसका फल तो अभी आगे जाकर मिलेगा। समझ में आया? आपकी समझ में आती है यह बात? समझ नहीं आती हो तो निकाल दें इस बात को।

प्रश्नकर्ता : मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को, किसी गरीब-अशक्त की सेवा करनी चाहिए या फिर भगवान की भजना करनी चाहिए? या किसी को दान देना चाहिए? क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मानसिक शांति चाहिए तो अपनी चीज़ दूसरों को खिला देना। कल आइसक्रीम का डिब्बा भरकर लाना और इन सभी को खिलाना। उस समय कितना आनंद होता है, यह तू मुझे बताना। इन कबूतरों को तू दाना डाले उससे पहले तो वे उछलकूद करने लगते हैं। और तूने डाला, तेरी अपनी वस्तु तूने दूसरों को दी कि भीतर आनंद शुरू हो जाता है। अभी रास्ते में कोई मनुष्य गिर गया, उसकी टाँग टूट गई और खून निकल रहा हो, वहाँ तू अपनी धोती फाड़कर पट्टी बाँधेगा तो उस वक्त तुझे आनंद होगा।

बेटियाँ, बेटों की शादी कैसे होती होगी? ऐसा है न, बेटियों पर पैसों का ज़्यादा खर्च होता है। बेटियाँ अपना लेकर आई हैं। वे ही बैंक में जमा करवाती है। बेटियों के पैसे बैंक में जमा होते हैं और बाप खुश होता है कि देखो मैंने सत्तर हज़ार खर्च करके शादी करवाई, उस ज़माने में! उस ज़माने की बात कर रहा हूँ। अरे, तूने क्या किया? उसके पैसे बैंक में थे। तू तो वही का वही है, 'पावर

ऑफ एटर्नी' है। तुझे उसमें क्या? लेकिन वह रौब जमाता है। और कोई लड़की (अपने भाग्य में) तीन हज़ार लेकर आई हो, तो उस समय उसके बाप का व्यापार सब ठंडा पड़ जाता है। तब तीन हज़ार में ही शादी होगी, क्योंकि वह जितना लाई है उतना खर्च होगा।

ये लड़के-लड़कियों के सभी के खुद के पैसे हैं। हम जो जोड़कर रखते हैं न, वह तो उसकी व्यवस्था अपने हाथों में है, बस उतना ही है।

हमारे लोग कहते हैं कि हमें दूध से धोकर दे देने हैं। अरे, दूध से धोकर देने वाले, यह गलत अहंकार है। मुझे पैसे लौटाने हैं ऐसा भाव रखना, तो लौटा सकेगा! लेते समय, 'वापस लौटाने हैं' ऐसा तय करके जो लेते हैं, उसका व्यवहार मैंने बहुत सुंदर देखा है! कुछ तो तय होना चाहिए न, पहले से डिसीज़न! बाद में विपरीत संजोग आ मिलें तो वह अलग बात है, लेकिन डिसीज़न (निश्चय) तो होना चाहिए न! यही तो सारी 'पज़ल' है न!

हम पूछे कि 'क्यों साहब, तकलीफ में हो?' तब कहे, 'क्या करें? ये तीन दुकानें, यहाँ सँभालना, वहाँ सँभालना!' और अर्थी उठें तब चार नारियल ही साथ ले जाने हैं। दुकाने तीन हों, दो हों या एक हो लेकिन फिर भी नारियल तो चार ही और वे भी बिना पानी के। और ऊपर से कहता है, 'तीन दुकानें सँभालनी है मुझे।' कहेगा, 'एक फोर्ट में है, यहाँ एक कपड़े की है, एक भूलेश्वर में है।' फिर भी सेठ के मुँह पर जैसे अरंडी का तेल चुपड़ा होता है। खाते समय भी दुकान, दुकान, दुकान! रात को सपने में भी कपड़े के सारे थान नापता है! यानी मरते समय लेखा-जोखा आएगा, इसलिए सँभलकर चलना।

व्यापार के विचार कब तक करने चाहिए? जब तक बोझा न लगे तभी तक करना। बोझा लगे तब बंद कर देना। वर्ना मारे गए समझना। चार पैर और ऊपर से पूँछ मिलेगी। फिर रँभाएगा! चार पैर और पूँछ, समझे आप?

[3] व्यापार, सम्यक् समझ से

हिन्दुस्तान में मनुष्य जन्म मिला, वह मोक्ष हेतु के लिए ही है। उसी के लिए अपना जीवन है। यदि ऐसा हेतु रखा हो तो फिर उसमें से जितना मिला उतना सही। लेकिन हेतु तो होना ही चाहिए न? यह खाना-पीना सब उसी के लिए है, समझे आप? जीवन किस के लिए जीना है, सिर्फ कमाने के लिए? हर एक जीव सुख खोजता है। सर्व दुःखों से मुक्ति कैसे हो यह जानने के लिए ही जीवन जीना है। इसमें मोक्षमार्ग प्राप्त कर लेना है। मोक्षमार्ग के लिए ही है यह सबकुछ।

दो अर्थ (हेतु) से लोग जीते हैं। आत्मार्थ हेतु के लिए जीने वाला तो कोई विरल ही होगा। अन्य सभी लक्ष्मी के अर्थ से जी रहे हैं। सारा दिन लक्ष्मी, लक्ष्मी और लक्ष्मी! लक्ष्मी जी के पीछे तो सारा संसार पागल हुआ है न! लेकिन उसमें सुख है ही नहीं न! घर बंगलें यों ही खाली पड़ें रहते हैं और दोपहर को वे कारखाने में होते हैं। तब फिर बंगले का आनंद कहाँ ले पाते हैं? अतः आत्मज्ञान जानो! ऐसे अंधे होकर कब तक भटकते रहना हैं?

कोई पूछे कि मैं किस धर्म का पालन करूँ? तब हम कहते हैं कि भाई, इन तीन वस्तुओं का पालन कर : (1) पहला नीतिमत्ता! तेरे पास पैसे कम-ज़्यादा हो उसमें हर्ज नहीं, मगर 'नीतिमत्ता पालना' इतना अवश्य करना, भाई।

(2) फिर दूसरा 'ओब्लाइजिंग नेचर' रखना! तेरे पास पैसे नहीं हों तो बाज़ार जाते वक्त कहना, 'आपको बाज़ार का कोई काम हो तो कहिए, मैं बाज़ार जा रहा हूँ।' इस तरह किसी की मदद करना। यह है ओब्लाइजिंग नेचर।

(3) तीसरा, उसके बदले में कुछ पाने की इच्छा मत रखना। सारा संसार बदले की अपेक्षा रखता है। आपकी इच्छा होगी तो भी बदला मिलेगा और इच्छा नहीं होगी तो भी बदला मिलेगा। ऐसा एक्शन-रिएक्शन आता है। इच्छाएँ आपकी भीख हैं, जो व्यर्थ जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा की प्रगति के लिए क्या करते रहना चाहिए?

दादाश्री : उसे प्रामाणिकता की निष्ठा पर चलना चाहिए। वह निष्ठा ऐसी कि बहुत तंगी में आ जाए, तब आत्मशकित का आविर्भाव हो। यदि तंगी नहीं हो और बहुत पैसे आदि हों, तब वहाँ आत्मा-वात्मा प्रकट नहीं होता। प्रामाणिकता, एक ही रास्ता है। केवल भक्ति से कुछ हो सके ऐसा नहीं होता, प्रामाणिकता नहीं हो और भक्ति करे उसका कोई अर्थ नहीं। इसके साथ प्रामाणिकता होनी ही चाहिए। प्रामाणिकता से मनुष्य फिर से मनुष्य जन्म पा सकता है। और जो लोग मिलावट करते हैं, जो बिना हक़ का ले लेते हैं, बिना हक़ का भोगते हैं, वे सभी यहाँ से जानवर योनि में जाते हैं। उसमें कोई कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि स्वभाव ही ऐसा बंध गया है *अणहक्क* का भोगने का। इसलिए फिर वहाँ जानवर में जाए तो भोग पाएगा वहाँ पर। वहाँ तो कोई किसी की पत्नी ही नहीं होती न! सभी औरतें खुद की ही! यहाँ मनुष्य में तो विवाहित लोग है, इसलिए किसी की औरत पर दृष्टि मत बिगाड़ना लेकिन जिसे आदत पड़ गई है, वह फिर वहाँ जानवर में जाता है। एक जन्म, दो जन्म वहाँ भोगकर आए, तब सीधा होता है। उसे सीधा करते हैं ये सारे जन्म। सीधा होकर वापस यहाँ आता है, फिर से टेढ़ा हो, तब फिर वहाँ भेजकर सीधा करते हैं। इस प्रकार सीधा होते-होते फिर मोक्ष के लायक हो जाता है। जब तक आड़ाईयाँ (टेढ़ापन) रहेंगी, तब तक मोक्ष नहीं होता।

नीतिमय पैसे लाए तो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन अनीति के पैसे लाए तो समझो अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारी और अर्थी उठेगी तब पैसे यहीं पड़े रहेंगे। वे कुदरत की जब्ती में जाते हैं और उसने यहाँ पर जो गुत्थियाँ उलझाईं, वे उसे फिर भुगतनी पड़ेगी।

भगवान को नहीं भजे और नीति से चले तो भी बहुत हो गया। भगवान को भजे और नीति से नहीं चले तो उसका कोई अर्थ नहीं। वह मीनिंगलेस है। फिर भी हमें ऐसा नहीं कहना चाहिए। वर्ना, वह फिर भगवान को छोड़ देगा और अनीति बढा़ते रहेगा। अतः नीति जैसा कुछ रखना। उसका फल अच्छा आएगा।

संसार में सुख एक ही जगह है। जहाँ संपूर्ण नीति हो। प्रत्येक

व्यवहार में संपूर्ण नीति होगी, वहाँ पर सुख है। और दूसरा, जो समाज सेवक होगा और वह खुद के लिए नहीं पर दूसरों के लिए जीवन व्यतीत करता है तो उसे बहुत ही सुख होगा, लेकिन वह सुख भौतिक सुख है, वह मूर्च्छा का सुख कहलाता है।

ये वाक्य आपकी दुकान पर लिखकर लगवाना :

(1) प्राप्त को भोगो-अप्राप्त की चिंता मत करो।

(2) भुगते उसीकी भूल।

(3) डिसऑनेस्टी इज़ द बेस्ट फूलिशनेस।

दुनिया में कुछ नहीं है, ऐसा नहीं है। सभी चीज़ें दुनिया में हैं। लेकिन *'सकल पदार्थ है जगमांहि, भाग्यहीन नर पावत नहीं'*। ऐसा कहते हैं न? अर्थात् जितनी कल्पना में आएँ उतनी सभी चीज़ें संसार में होती हैं, लेकिन आपके अंतराय नहीं होने चाहिए, तब वे मिलेंगी।

सत्यनिष्ठा चाहिए। ईश्वर कुछ मदद करने के लिए फ़ुरसत में नहीं बैठे हैं। आपकी नीयत सच्ची होगी तभी आपका काम होगा।

लोग कहते हैं कि, 'सच्चे की ईश्वर मदद करता है!' लेकिन नहीं, ऐसा नहीं है। ईश्वर सच्चे की मदद करे तो खोटे ने क्या गुनाह किया है? क्या ईश्वर पक्षपाती है? ईश्वर को तो सब जगह निष्पक्षपाती रहना चाहिए न? ईश्वर ऐसे किसी की मदद नहीं करता। वह इसमें हाथ ही नहीं डालता। ईश्वर का नाम याद करते ही आनंद होता है। उसकी वजह क्या है कि वह मूल वस्तु है। और वह खुद का ही स्वरूप है। इसलिए याद करते ही आनंद होता है। बाकी ईश्वर कुछ करते नहीं हैं। वे कुछ दे ही नहीं सकते। वे देना सीखे ही नहीं हैं। और उनके पास कुछ है ही नहीं, तो देंगे क्या?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, व्यवहार किस तरह करना चाहिए?

दादाश्री : विषमता पैदा नहीं होनी चाहिए। समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना चाहिए। हमें जहाँ से काम निकालना हो, वह मैनेजर कहे, 'दस हज़ार दोगे, तभी आपका पाँच लाख का चेक निकालूँगा।'

अब हमारे शुद्ध व्यापार में कितना नफा होगा? पाँच लाख रुपयों में, दो लाख हमारे घर के हों और तीन लाख लोगों के हों, अब वे लोग धक्के खाएँ, तो वह क्या अच्छा कहलाएगा? इसलिए आप उस मैनेजर को समझाना कि, 'भाईजी, मुझे इसमें कोई नफा नहीं है'। अटा-पटाकर पाँच में निपटारा करना और नहीं तो आखिर में दस हज़ार रुपये देकर भी हमारा चेक ले लेना। अब वहाँ, 'मैं ऐसे रिश्वत कैसे दे सकता हूँ?' ऐसा करोगे तो इन लोगों को ज़वाब कौन देगा? वह माँगने वाला बड़ी-बड़ी गालियाँ देगा! ज़रा समझ लो, समयानुसार समझ लो।

रिश्वत देना गुनाह नहीं है। जिस समय जो व्यवहार आया उसे एडजस्ट करना तुझे नहीं आया, वह गुनाह है। अब ऐसे में कब तक पूँछ पकड़कर रखनी? आप से एडजस्ट हो सके, आपके पास लोगों को चुकाने के लिए बैंक बैलेन्स हो और लोग आपको भला-बुरा नहीं कहें, तब तक पकड़े रहना, लेकिन यदि बैंक बैलेन्स कम पड़ रहा हो और लोग भला-बुरा कहने लगें तो क्या करना चाहिए? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : मैं तो अपने व्यापार में कह देता था कि, 'भाई, दे आओ रुपये, हम भले ही चोरी नहीं करते, कुछ और नहीं करते, लेकिन रुपये दे आना।' वर्ना लोगों को धक्के खिलाना, वह हम जैसे भले लोगों का काम नहीं। अर्थात् रिश्वत दे देनी चाहिए, उसे मैं गुनाह नहीं कहता। गुनाह तो, किसीने हमें माल दिया और हम उसे समय पर पैसे नहीं दें तो उसे गुनाह कहता हूँ।

रास्ते में अगर कोई लुटेरा आपसे पैसे माँगे तो आप दे दोगे या नहीं? या फिर सत्य के खातिर नहीं दोगे?

प्रश्नकर्ता : दे देने पड़े।

दादाश्री : क्यों दे देते हो वहाँ? और यहाँ क्यों नहीं देते? ये दूसरे प्रकार के लुटेरे हैं। आपको नहीं लगता कि ये दूसरे प्रकार के लुटेरे हैं?

तब ये दूसरे प्रकार के लुटेरे! ये सुधरे हुए और वे बगैर सुधरे लुटेरे! ये सिविलाइज़्ड् लुटेरे! वे अनसिविलाइज़्ड् लुटेरे!

प्रश्नकर्ता : आपश्री भगवान प्राप्ति के मार्ग पर मुड़ गए, साथ ही आप बड़े व्यापार के साथ जुड़े हुए हैं। तो दोनों कैसे संभव है? यह समझाइए।

दादाश्री : अच्छा प्रश्न है कि 'हँसना और आटा फाँकना', साथ में दोनों कैसे हो सकता है? एक ओर तो व्यापार करते हो और इस ओर भगवान की राह पर हो, यह दोनों कैसे संभव है? लेकिन हो पाए, ऐसा है। बाहर का अलग चलता है और अंदर का अलग चलता है, ऐसा है। दोनों अलग ही हैं।

ये 'चंदूभाई' हैं न, ये चंदूभाई अलग है और आत्मा अलग है। अंदर दोनों अलग रखे जा सकें ऐसा है। दोनों के गुणधर्म भी अलग हैं। जैसे यहाँ पर सोना और तांबा दोनों मिल गए हो और उन्हें फिर से अलग करना हो तो हो पाएँगे या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हो पाएँगे।

दादाश्री : उसी तरह ज्ञानी पुरुष इसे अलग कर सकते हैं। ज्ञानी पुरुष चाहे सो कर सके, आपको यदि अलग करवाना हो तो आना यहाँ और लाभ लेना हो तो आना।

व्यापार चलता रहता है, लेकिन व्यापार में एक क्षण के लिए भी हमारा उपयोग नहीं होता। केवल नाम होता है वहाँ। लेकिन हमारा उपयोग क्षणभर के लिए भी नहीं होता। महीने में एकाध दिन दो घंटों के लिए मुझे जाना पड़ता है और तब जाता भी हूँ, लेकिन हमारा उपयोग उसमें नहीं होता। उपयोग नहीं होना यानी क्या, यह समझे आप? ये लोग दान लेने जाते हैं न? अब किसी से दान लेने गए हो, और हम कहें कि इस स्कूल के लिए दान कीजिए, तो वह उसका मन अलग रखता है हम से। रखता है या नहीं रखता?

प्रश्नकर्ता : रखता है।

दादाश्री : उसी तरह इसमें (भीतर) सब अलग रहता है। उसमें अलग रखने के रास्ते कई हैं। आत्मा भी अलग है और यह 'चंदूभाई' भी अलग है।

व्यापार में चित्त नहीं रखा। पूरी ज़िंदगी मैंने व्यापार में चित्त रखा ही नहीं है। व्यापार किया ज़रूर है। मेहनत की होगी, काम किया होगा, लेकिन चित्त नहीं रखा।

प्रश्नकर्ता : व्यापार की चिंता होती है, बहुत बाधाएँ आती है।

दादाश्री : चिंता होने लगे तो समझना कि काम और बिगड़ने वाला है। चिंता नहीं हो तो समझना कि कार्य नहीं बिगड़ेगा। चिंता कार्य की अवरोधक है। चिंता से तो व्यापार की मौत आती है। जो कम-ज़्यादा होता है, उसीका नाम व्यापार। *पूरण-गलन* है वह। *पूरण* हुआ उसका *गलन* हुए बगैर रहता ही नहीं। *पूरण-गलन* में हमारी कोई मिल्कियत नहीं है और जो हमारी मिल्कियत है उसमें कोई *पूरण-गलन* होता नहीं! ऐसा शुद्ध व्यवहार है! आपके घर में आपके बीवी-बच्चे सभी पार्टनर्स है न?

प्रश्नकर्ता : सुख-दुःख भुगतने में ज़रूर।

दादाश्री : आप अपने बीवी-बच्चों के अभिभावक (संरक्षक) कहलाते हैं। अकेला अभिभावक ही क्यों चिंता करे? और घर वाले तो बल्कि कहते हैं कि आप हमारी चिंता मत करना।

प्रश्नकर्ता : चिंता का स्वरूप क्या है? जन्में तब तो थी नहीं, फिर यह आई कहाँ से?

दादाश्री : जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ेगी, वैसे-वैसे कुढ़न बढ़ेगी। जब जन्में तब बुद्धि थी? व्यापार के लिए सोचने की आवश्यकता है लेकिन उस से आगे गए तो बिगड़ जाएगा। व्यापार के लिए दस-पंद्रह मिनट सोचना चाहिए, फिर उससे आगे बढ़े और विचारों के बवंडर उठने लगें तो वह नॉर्मेलिटी से बाहर गया कहलाएगा, तब उसे छोड़ देना। व्यापार के विचार तो आएँगे ही लेकिन उस विचार में तन्मयकार होकर

विचार चलते रहें तो उसका ध्यान उत्पन्न होगा और तब चिंता होगी। और यह चिंता बहुत नुकसान करती है।

प्रश्नकर्ता : मन में तय करते हैं कि आर्तध्यान, रौद्रध्यान नहीं करना है लेकिन दुकान घाटे में ही चलती है, तो फिर करना पड़ेगा न, क्या करें?

दादाश्री : अरे दुकान घाटे में चलती है, तू घाटे में चलता है क्या? घाटे में तो दुकान चलती है। दुकान का स्वभाव ही ऐसा है कि घाटे में भी चलती है और फिर नफा भी करवाती है। अर्थात् वह घाटा और नफा, दोनों दिखाती रहेगी!

हम व्यापार में काम शुरू करने से पहले क्या करते हैं? जब स्टीमर समुद्र में उतारते हैं, तब महाराज से पूजा करवाते हैं, सत्यनारायण की कथा और सभी अन्य विधियाँ करवाते हैं। कभी-कभी स्टीमर का पूजन भी करते हैं, फिर उस स्टीमर के कानों में हम कह देते हैं कि, 'तुझे जब डूबना हो तब डूबना, हमारी इच्छा नहीं है! ऐसी हमारी इच्छा नहीं है!' ऐसे 'ना' कह देते हैं तो फिर निःस्पृह हो जाते हैं। तो फिर वह भले ही डूब जाए। हमारी इच्छा नहीं है, ऐसा कहा यानि वह शक्ति काम करती है। और यदि वास्तव में डूब गई तो हम समझेंगे कि उसे कान में कहा ही था। हमने नहीं कहा था क्या? अर्थात् एडजस्टमेन्ट सेट करें तब पार आएगा इस संसार में।

मन का स्वभाव ऐसा है कि यदि उसकी मनमानी नहीं हो तो निराश हो जाता है। ऐसा न हो इसलिए इस तरह से रास्ते निकालने चाहिए। फिर छः महीने के बाद डूबे या फिर दो साल के बाद, लेकिन तब हम 'एडजस्टमेन्ट' ले लेते हैं कि छः महीने तो चला। व्यापार यानी इस पार या उस पार। आशा का महल निराशा लाए बगैर रहता नहीं। संसार में वीतराग रहना बड़ा मुश्किल है। वह तो हमारी (दादाजी की) ज़बरदस्त ज्ञानकला और बुद्धिकला, दोनों हैं, इसलिए हम वीतराग रह पाते हैं।

पहले एक बार, ज्ञान होने से पहले हमारी कंपनी को घाटा

हुआ था। तब हमें सारी रात नींद नहीं आई और चिंता होती रही। तब भीतर से ज़वाब आया कि इस घाटे की चिंता कौन-कौन कर रहा होगा? मुझे लगा कि मेरे हिस्सेदार तो शायद चिंता नहीं भी कर रहे हों। मैं अकेला ही कर रहा होऊँ। और बीवी-बच्चे सभी हिस्सेदार हैं, लेकिन वे तो कुछ जानते नहीं। अब वे लोग व्यापार के बारे में कुछ नहीं जानते, फिर भी उनका संसार चलता है, तो मैं अकेला ही कमअक्ल हूँ, जो सारी चिंता लिए बैठा हूँ! फिर मुझे अक्ल आ गई।

आप एक ही पक्ष में पड़े हों? जिस कौने में लोग पड़े हैं, आप भी उसीमें पड़े हो? मुनाफे के पक्ष में। आपको लोगों से विरुद्ध चलना है। लोग नफा चाहते हैं और आप कहना कि 'घाटा हो'। घाटा चाहने वाले को कभी चिंता नहीं होती। नफा चाहने वाला हमेशा ही चिंता में रहेगा और घाटा चाहने वाले को कभी चिंता होगी ही नहीं, उसकी हम गारन्टी देते हैं। हमारी बात समझे?

व्यापार शुरू करते ही लोग क्या कहते हैं? इस काम में चौबीस हज़ार तो अवश्य मिलेंगे! अब जब फॉरकास्ट (आगाही) करता है, तब बदलते संयोग लक्ष्य में लिए बगैर यों ही फॉरकास्ट करता है।

हमने भी सारी ज़िंदगी कॉन्ट्रैक्ट में गुज़ारी है, सभी तरह के कॉन्ट्रैक्ट किए हैं। और समुद्र में जेटियाँ भी बनाई हैं। अब वहाँ, व्यापार की शुरूआत में मैं क्या करता था? जहाँ पाँच लाख का नफा होने वाला हो वहाँ तय करता कि एकाध लाख मिलें तो काफी हैं। वर्ना अगर बिना नफा-नुकसान, इन्कमटैक्स निकले और हमारा भोजन खर्च निकले तो भी बहुत हो गया। फिर मिलते हैं, तीन लाख। तब मन का आनंद देखो, क्योंकि धारणा से कहीं अधिक प्राप्त हुए। और यह तो चालीस हज़ार माना हो और बीस मिलें तो दुःखी हो जाता है।

व्यापार के दो लड़के, एक का नाम घाटा और दूसरे का नाम नफा। घाटे नामक बेटों को कोई पसंद नहीं करता, लेकिन दोनों होंगे ही। वे पैदाइशी होते हैं। व्यापार में नुकसान हो रहा हो तो वह रात को होता है और दिन में?

हम मेहनत करें, सब तरफ से ध्यान रखें फिर भी यदि कुछ नहीं मिले तो समझ लेना कि हमारे संयोग सीधे नहीं है। अब वहाँ बहुत ज़ोर लगाएँ तो बल्कि घाटा होगा। उसके बजाय हमें आत्मा संबंधी कुछ कर लेना चाहिए। पिछले जन्म में ऐसा नहीं किया, इसलिए तो यह गड़बड़ हुई। जिसे हमारा ज्ञान दिया हो उसकी तो बात ही निराली है, लेकिन यदि हमारा ज्ञान नहीं मिला हो तब भी कई लोग भगवान के भरोसे छोड़ देते हैं न! उन्हें क्या करना पड़ता है? 'भगवान जो करें वही सही' कहते हैं न? और बुद्धि से नापने जाए तो कभी तौल मिल पाए, ऐसा नहीं है।

जब संयोग अच्छे नहीं हों, तब लोग कमाने निकलते हैं। तब तो भक्ति करनी चाहिए। संयोग अच्छे नहीं हों, तब क्या करना चाहिए? आत्मा संबंधी सत्संग आदि करते रहना। सब्ज़ी नहीं हो तो ना सही, खिचड़ी जितना तो होगा न! यह तो यदि योग होगा तो कमाएगा, वर्ना नफे वाले बाज़ार में भी घाटा उठाए और यदि योग हो तो घाटे वाले बाज़ार में भी नफा कमाए। सब योग की बात है।

घाटा या नफा, कुछ भी अपने बस की बात नहीं है, इसलिए नैचरल एडजस्टमेन्ट के आधार पर चलो। दस लाख कमाने के पश्चात् एकदम से पाँच लाख का घाटा हो जाए तब? यह तो लाख का घाटा भी नहीं सह सकते न! फिर सारा दिन रोना-धोना और चिंता करके रख देते हैं! अरे, पागल भी हो जाते हैं! अभी तक इस तरह पागल हुए मैंने कई देखे हैं।

प्रश्नकर्ता : दुकान पर ग्राहक आएँ, इसलिए मैं दुकान जल्दी खोलता हूँ और देर से बंद करता हूँ, यह ठीक है न?

दादाश्री : आप ग्राहक को आकर्षित करने वाले कौन? आपको तो दुकान, लोग जब खोलते हों, उस समय पर खोलना। लोग सात बजे खोलते हों और आप साढ़े नौ बजे खोलें तो वह गलत कहलाएगा। लोग जब बंद करें तब आप भी बंद करके घर जाना। व्यवहार क्या कहता है कि लोग क्या करते हैं वह देखो। लोग सो जाएँ तो आप

भी सो जाना। रात दो बजे तक अंदर ऊधम मचाते रहें वह किस काम का? भोजन लेने के पश्चात् क्या सोचते हैं कि यह कैसे पचेगा? उसका परिणाम तो सुबह निकल ही आएगा न! व्यापार में भी सब ऐसा ही है।

ऐसा है न, खाते-पीते समय चित्त कारखाने पर नहीं जाए तो कारखाना ठीक है, लेकिन यदि खाते-पीते समय चित्त कारखाने में रहता है तो उस कारखाने का क्या करे? जो अपने हार्ट फेल का इंतज़ाम करवाए वह कारखाना, वह अपना काम नहीं है। अर्थात् नॉर्मेलिटी समझनी होगी। अभी तीन शिफ्ट चलाता है, इसमें इसकी नयी शादी हुई है, इसे बहू से मिलने का समय नहीं मिलेगा तो क्या होगा? यह तीन शिफ्ट चलाता है, क्या यह ठीक है? नई बहू शादी करके लाया है, तो बहू के मन का समाधान रखना चाहिए न? घर जाने पर बहू फरियाद करे कि, 'आप तो मुझ से मिलते भी नहीं है, बातचीत भी नहीं करते!' तो यह उचित नहीं कहलाएगा न! संसार में उचित लगे ऐसा होना चाहिए।

घर में फादर के साथ या औरों के साथ व्यापार की बाबत में मतभेद नहीं हो, इसलिए आप हाँ में हाँ मिलाना, कहना कि 'जो चल रहा है उसे चलने दीजिए।' लेकिन घर के सभी सदस्यों को साथ बैठकर, ऐसा कुछ तय करना चाहिए कि इतनी रकम जमा करने के पश्चात् हमें और ज़्यादा नहीं चाहिए, घर के सभी मेम्बरों की पार्लामेन्ट में मिलकर तय करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : इससे कोई 'एग्री' (संमत) नहीं होगा, दादाजी।

दादाश्री : फिर वह काम का नहीं। सभी को तय करना चाहिए। यदि वे दो सौ साल के आयुष्य का एक्स्टेन्शन ले आएँगे तो हम चार शिफ्ट चलाएँगे!

प्रश्नकर्ता : अब व्यापार कितना बढ़ाना चाहिए?

दादाश्री : व्यापार उतना ही करना कि चैन से नींद आए, जब

हम बंद करना चाहें तब कर सकें, ऐसा होना चाहिए। व्यापार बढ़ा-बढ़ाकर मुसीबतों को न्यौता नहीं देना है।

यह ग्राहक और व्यापारी के बीच संबंध तो होगा ही न? अगर व्यापारी दुकान बंद कर दे तो क्या वह संबंध छूट जाएगा? नहीं छूटेगा। ग्राहक तो याद करेगा कि, 'इस व्यापारी ने मेरे साथ ऐसा किया था, ऐसा खराब माल दिया था।' लोग तो बैर याद रखते हैं, तब फिर भले ही इस जन्म में आपने दुकान बंद कर दी हो पर अगले जन्म में वह आपको छोड़ेगा नहीं। बैर वसूले बिना चैन नहीं लेगा। इसीलिए भगवान ने कहा है कि 'किसी भी रास्ते से बैर छोड़ो।' हमारे एक पहचान वाले हम से रुपये उधार ले गए थे, फिर लौटाने ही नहीं आए। तब हम समझ गए कि यह बैर से बंधा हुआ होगा, तो भले ही ले गया, ऊपर से मैंने उसे कहा कि, 'तू अब हमें रुपये मत लौटाना, तुझे माफ है।' यों पैसे छोड़कर भी यदि बैर छूटता हो तो छुड़ाओ। किसी भी तरह बैर छोड़ो, वर्ना किसी एक के साथ बंधा हुआ बैर भी हमें भटकाएगा।

लाख-लाख रुपये जाएँ तब भी हम (दादाजी) जाने देते हैं, क्योंकि रुपये जाने वाले हैं और हम रहने वाले हैं। कुछ भी हो पर हम कषाय नहीं होने देते। लाख रुपये गए तो उसमें क्या हुआ? हम खुद तो सलामत हैं!

इन सभी बाबतों को अलग-अलग रखना। व्यापार में घाटा हो तो कहना कि व्यापार को घाटा हुआ, क्योंकि हम (खुद) नफे-नुकसान के मालिक नहीं हैं, लेकिन नुकसान हम अपने सिर क्यों लें? हमें नफा-नुकसान स्पर्श नहीं करता। और यदि नुकसान हुआ और इन्कमटैक्स वाला आए, तो व्यापार से कहना कि, 'हे व्यापार, तुझे चुकाने हैं, तेरे पास चुकाने को हों तो इन्हें चुका दे।'

हम से (दादाजी से) कोई ऐसा पूछे कि, 'इस साल घाटे में रहे हो?' तो हम कहते हैं कि, 'नहीं भाई, हम घाटे में नहीं हैं, व्यापार को घाटा हुआ है।' और नफा होने पर कहते हैं कि, 'व्यापार को नफा हुआ है।' हमें नफा-नुकसान होता ही नहीं है।

कोई सेठ मुझ से आग्रह करें कि, 'नहीं, आपको तो प्लेन में कलकत्ता आना ही होगा।' मैं 'नहीं, नहीं' करता रहूँ, फिर भी आग्रह छोड़ते ही नहीं। अत: उस कमी-बढ़ौतरी का हिसाब ही नहीं रखना चाहिए। जब भी कभी नुकसान है, ऐसा लगे तो उस दिन हमें पाँच रुपये 'अनामत' के नाम जमा कर देने चाहिए, ताकि अपने पास अनामत सिलक (जमापूँजी) रहे। ये खाते क्या हमेशा के लिए हैं? दो, चार या आठ साल के बाद फाड़ नहीं देते? यदि सच्चा होता तो कोई फाड़ता? यह तो सभी मन को मनाने के साधन हैं। जब किसी दिन हमारे से डेढ़ सौ का घाटा हुआ हो उस दिन पाँच सौ अनामत के खाते में जमा कर लें, ताकि साढ़े तीन सौ की पूँजी में अपने पास रहेगी। तो डेढ़ सौ के घाटे की जगह हमें साढ़े तीन सौ की पूँजी नजर आएगी। ऐसा है। यह संसार सारा गप्प गुणा गप्प एक सौ चौ वालीस है, बारह गुणा बारह एक सौ चौ वालीस नहीं है यह। बारह गुणा बारह एक सौ चौ वालीस होता तो वह एक्ज़ेक्ट सिद्धांत कहलाता। संसार यानी गप्प गुणा गप्प एक सौ चौ वालीस और मोक्ष यानी बारह गुणा बारह एक सौ चौ वालीस।

समभाव किसे कहते हैं? समभाव, नफा और घाटा दोनों को समान कहता है। समभाव यानी मुनाफे की जगह घाटा हो तो भी परेशानी नहीं, नफा हो तो भी हर्ज नहीं। नफा हो तो उत्साहित नहीं होता और घाटे में डिप्रेशन (उदासी) नहीं आए। अर्थात् कुछ असर नहीं होता। द्वंद्वातीत हुए होते हैं।

मैं तो, व्यापार में घाटा हुआ हो तो भी लोगों को बता देता हूँ और यदि नफा हुआ हो तब भी लोगों से कह देता! लेकिन लोगों के पूछने पर ही, वर्ना अपने व्यापार की बात ही नहीं करता! लोग पूछें कि 'आपको अभी घाटा हुआ है क्या यह बात सही है?' तब बता देता हूँ कि, 'वह बात सही है।' इस पर कभी हमारे हिस्सेदार ने आपत्ति नहीं की कि 'आप क्यों कह देते हैं?' क्योंकि ऐसा कहना तो अच्छा, ताकि लोग यदि उधार दे रहे हों तो बंद हो जाए और अपना कर्ज़ा बढ़ने से कम हो जाएगा। लोग तो क्या कहते हैं? 'ऐसा

नहीं कहना चाहिए, वर्ना लोग उधार नहीं देंगे।' अरे, कर्ज़ा तो हमारा बढ़ेगा न, इसलिए घाटा हुआ हो तो भी स्पष्ट कह दो न, कि भाई घाटा हुआ है।

घाटा होने पर सामने वाले को खुलकर कह देना ताकि खुद हलका हो जाए। वर्ना अकेला मन में उलझे रहने से बोझा लगता है।

जितनी भी परेशानी आए उन्हें निगल जाना। ज्ञान से पहले जब हम व्यापार करतें थे, तब बहुत परेशानियाँ आई थीं। उसमें से पार उतरे तभी ऐसा ज्ञान हुआ। हमारे बेटे-बेटी गुज़र गए, तो भी हमने पेड़े खिलाए थे।

व्यापार में जब बहुत मुश्किल आ जाती, तब तो हम इसके बारे में किसी से बात ही नहीं करते थे। हीराबा को बाहर से पता चलता कि व्यापार में मुश्किल है। जब वे हमसे पूछतीं कि, 'क्या घाटा हुआ है?' तब हम कहते कि 'नहीं नहीं। ये लीजिए रुपये, पैसे आए हैं, आपको चाहिए?' तब हीराबा कहतीं कि, 'लोग तो कह रहे हैं कि घाटा हुआ है।' तब मैं कहता कि, 'ऐसा नहीं है, हमने तो ज़्यादा कमाए हैं। लेकिन यह बात गुप्त रखना।'

हमारे व्यापार में घाटा आने पर कुछ लोगों को दुःख होता था, वे मुझ से पूछते कि, 'कितना घाटा हुआ है? बड़ा घाटा हुआ है?' तब मैं कहता कि, 'घाटा हुआ था, लेकिन अभी अचानक ही एक लाख रुपये का नफा हुआ है!' इससे उसे ठंडक हो जाती।

यह तो सब मैंने अनुभव से निष्कर्ष निकाला था, बाकी मैं व्यापार करते समय भी पैसों के बारे में नहीं सोचता था। पैसों के लिए सोचने वाले, उसके जैसा फुलिश (मूर्ख) और कोई है ही नहीं! ये (पैसे कमाना) तो माथे पर लिखा है, जाने दो न! घाटा भी माथे पर लिखा है। बिना सोचे भी घाटा होता है या नहीं होता?

व्यापार में कोई चालबाज़ लोग मिल जाएँ और हमारे पैसे खाने लगे, तब समझ लेना कि मेरे पैसे खोटे हैं इसलिए ऐसे लोग मिले

हैं। वर्ना चालबाज मिलते ही क्यों? मेरे साथ भी ऐसा होता था। एक बार खोटे पैसे आए थे, तब सभी चालबाज़ ही मिल गए थे, फिर मैंने तय किया कि ऐसा धन नहीं चाहिए।

व्यापार तो वही अच्छा कि जिसमें हिंसा नहीं समाई हो, किसी को अपने व्यापार से दुःख नहीं होता हो। यह तो अनाज वाले का व्यापार करता है और कम तौलता है। आजकल तो मिलावट करना सीखे हैं। उसमें भी खाने की चीज़ों में मिलावट करने वाला जानवर में जाता है। चार पैर होंगे तो फिर गिरेगा नहीं न? व्यापार में धर्म रखना वर्ना अधर्म घुस जाएगा।

व्यापार में, मन बिगाड़ेगा तो भी नफा 66,616 होगा और मन नहीं बिगाड़ेगा तो भी नफा 66,616 रहेगा, तब कौन सा व्यापार करना चाहिए?

व्यापार में प्रयत्न करते रहना, आगे 'व्यवस्थित' अपने आप बंदोबस्त करेगा। आप सिर्फ प्रयत्न करते रहना, उसमें प्रमाद मत करना। भगवान ने कहा है कि सब 'व्यवस्थित' है। नफा हज़ार या लाख होने वाला होगा तो चालाकी करने से एक पैसा भी नहीं बढ़ेगा और यह चालाकी अगले जन्म के लिए नये हिसाब जोड़ेगी सो अलग!

प्रश्नकर्ता : हमारे साथ कोई चालाकी कर रहा हो तो हमें भी चालाकी करनी चाहिए न? आज-कल लोग ऐसा ही करते हैं।

दादाश्री : इसी प्रकार चालाकी का रोग लग जाता है। और यदि 'व्यवस्थित' का ज्ञान हाज़िर रहा तो उसे धीरज रहेगा। यदि कोई हमसे चालाकी करने आए तो पिछले दरवाजे से (कोई उपाय करके) निकल जाना चाहिए, हमें सामने चालाकी नहीं करनी है।

अर्थात् कहना यह चाहते हैं कि जैसे नहाने के पानी के लिए, रात सोने के लिए बिछौना या अन्य कुछ चीज़ों के लिए आप ज़रा भी विचार नहीं करते, फिर भी आपको वह मिलता है या नहीं? उसी प्रकार लक्ष्मी के लिए भी साहजिक रहना चाहिए।

पैसे कमाने की भावना करने की ज़रूरत नहीं है, प्रयत्न भले ही चलते रहें। ऐसी भावना से क्या होता है कि, अगर पैसे मैं खींच लूँ तो सामने वाले के हिस्से में नहीं रहेंगे। इसलिए कुदरती क्वोटा (हिस्सा) जो निर्माण हुआ है, उसे ही हम रहने दें न, उसमें फिर भावना करने की क्या ज़रूरत है? ऐसा कहना चाहता हूँ। इससे तो लोगों के पाप होने बंद हो जाए, मैं यह कहना चाहता हूँ।

यह एक ही वाक्य में बड़ा सार समाया है, लेकिन यदि समझें तो। ऐसा नहीं है कि मुझ से ज्ञान प्राप्त करने की ज़रूरत है, ज्ञान नहीं लिया हो, लेकिन इतना उसकी समझ में आ जाना चाहिए कि यह सब हिसाब (अपने भाग्य) के अनुसार ही है, हिसाब के बाहर कुछ नहीं होता। वर्ना जब मेहनत करने पर भी घाटा आए, तब क्या हम नहीं समझ जाते! क्योंकि मेहनत यानी मेहनत, मिलना ही चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं है, घाटा भी होता है न!

यह भाव करते हैं, उसमें हर्ज है। अन्य क्रियाओं के लिए मेरा विरोध नहीं है। यानी लोग बात पढ़ लेते हैं, पर समझ में नहीं आती, बात बहुत सूक्ष्म होती है। जब तक झूठ की परख नहीं होती, तब तक झूठ अंदर घुस जाता है।

प्रश्नकर्ता : व्यापार में यही सही है, ऐसा समझने पर भी सही बात कह नहीं पाते।

दादाश्री : यानी कि व्यवहार अपने ताबे में नहीं है। निश्चय अपने ताबे में है। बीज बोना अपने ताबे में है, फल प्राप्त करना अपने ताबे में नहीं है। इसलिए भाव करो। खराब काम हो जाएँ फिर भी भाव अच्छा करना कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

सेठ तो कौन कहलाए? (अपने आश्रित से) एक अक्षर भी ऊँचा बोले तो वह सेठ ही नहीं कहलाएगा! और वे डाँटने लगे तो समझना कि यह खुद ही असिस्टेन्ट है! सेठ के मुँह पर तो कभी कड़वाहट नज़र ही नहीं आनी चाहिए। सेठ यानी सेठ ही दिखना चाहिए। वे अगर झिड़कियाँ देने लगे, तो सबके आगे उनकी कीमत

क्या रह जाएगी? फिर तो नौकर भी पीछे से कहेंगे कि ये सेठ तो हरदम दांत दिखाते हैं! झिड़कियाँ देते रहते हैं! जाने दो, ऐसे सेठ बनने से तो गुलाम बनना बेहतर। यदि आवश्यकता हो तो निपटारे के लिए अपनी ओर से बीच में एजन्सी रखना। लेकिन डाँटने के ऐसे काम खुद सेठ को नहीं करने चाहिए! नौकर भी खुद लड़ते हैं, किसान भी खुद लड़ता है और अगर आप भी खुद लड़ो तो फिर व्यापारी जैसा रहा ही कहाँ? सेठ ऐसा नहीं करते। कभी ज़रूरत पड़े तो बीच में एजन्सी तैयार करना अथवा लड़ने वाला ऐसा आदमी बीच में रखना जो उनकी ओर से लड़े। फिर सेठ उस झमेले का समाधान करवा दें।

1930 में बहुत मंदी थी। उस मंदी में सेठों ने इन बेचारे मज़दूरों का बहुत खून चूसा था। इसलिए अब इस तेज़ी के समय में मज़दूर सेठों का खून चूस रहे हैं। ऐसा इस दुनिया का, शोषण करने का रिवाज़ है। मंदी में सेठ चूसते हैं और तेज़ी में मज़दूर चूसते हैं। दोनों की एक के बाद एक बारी आती है। इसलिए ये सेठ जब शिकायत करते हैं, तब मैं कहता हूँ कि आपने 1930 में मज़दूरों को नहीं छोड़ा था, इसलिए अब ये मज़दूर आपको नहीं छोड़ेंगे। मज़दूरों का खून चूसने की पद्धति ही बंद कर दो, तो आपको कोई परेशान नहीं करेगा। अरे, भयानक कलियुग में भी कोई आपको परेशान करने वाला नहीं मिलेगा!

घर में भी तेज़ी-मंदी आती है। मंदी में पत्नी पर रौब जमाते फिरें तो फिर जब तेज़ी आएगी तो वह आप पर रौब जमाएगी। इसलिए तेज़ी-मंदी में एक जैसे रहो। समानतापूर्वक रहने से आपका सब अच्छी तरह चलेगा।

यह संसार क्षणभर के लिए भी बगैर न्याय वाला नहीं रहता। प्रति क्षण न्याय ही हो रहा है। संसार एक क्षण भी अन्याय सहन नहीं कर सकता, जो अन्याय किया है, वह भी न्याय ही हो रहा है!

प्रश्नकर्ता : व्यापार में भारी घाटा हुआ है तो क्या करूँ? व्यापार बंद कर दूँ या दूसरा व्यापार करूँ? कर्ज़ा बहुत चढ़ गया है।

दादाश्री : रुई बाज़ार का घाटा कहीं बनिए की दुकान खोलने से पूरा नहीं होता। व्यापार में हुआ घाटा व्यापार से ही पूरा होगा, नौकरी से भरपाई नहीं होगा। 'कान्ट्रैक्ट' के काम में हुआ घाटा कहीं पान की दुकान से पूरा होगा? जिस बाज़ार में घाव हुआ है, उसी बाज़ार में वह घाव भरेगा, वहीं उसकी दवाई होती है।

हम ऐसा भाव रखें कि हम से किसी जीव को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं हो। सारा कर्ज़ा चुकता हो जाए, ऐसा स्पष्ट भाव रखें। लक्ष्मी तो ग्यारहवाँ प्राण है। इसलिए किसी की लक्ष्मी हमारे पास नहीं रहनी चाहिए। हमारी लक्ष्मी किसी के पास रहे उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन निरंतर यही ध्येय रहना चाहिए कि मुझे पाई-पाई चुका देनी है। ध्येय लक्ष्य में रखकर आप सभी खेल खेलो। लेकिन खिलाड़ी मत बन जाना। खिलाड़ी बने कि आप खत्म!

प्रश्नकर्ता : मनुष्य की नीयत किस कारण खराब होती है?

दादाश्री : उसका खराब होने वाला हो, तब उसे अंदर से फोर्स आता है कि 'तू ऐसे मुड़ जा न, फिर देखा जाएगा।' उसका बिगड़ने वाला है इसलिए 'कमिंग इवेन्टस कास्ट देर शेडोज़ बिफोर (जो होने वाला है उसकी परछाँई पहले पड़ेगी)।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या वह उसे रोक सकता है?

दादाश्री : हाँ, रोक सकता है उसे। यदि उसे यह ज्ञान प्राप्त हुआ हो कि 'बुरे विचार आएँ तो भी उसका पश्चाताप कर' तो वह यदि ऐसा कहे कि, 'यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए।' इस तरह रोक सकता है। बुरे विचार जो आते हैं वे मूलतः गत ज्ञान के आधार पर आते हैं, लेकिन आज का ज्ञान उसे ऐसा कहता है कि यह करने जैसा नहीं है। तो फिर वह उसे रोक सकता है। आया समझ में? कुछ खुलासा हुआ?

नीयत बिगड़ना अर्थात् पाँच लाख रुपयों के लिए बिगाड़े, ऐसा नहीं। यह तो पच्चीस रुपयों के लिए भी नीयत बिगड़ जाती है! अर्थात्

इसमें, भोगने की इच्छा से कोई लेना-देना नहीं है। उसे इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हुआ है कि 'देने में क्या रखा है? देने के बजाय यहीं इस्तेमाल करो। जो होगा देखा जाएगा।' ऐसा उल्टा ज्ञान मिला है उसे।

इसलिए अभी हम सभी से ऐसा कह सकते हैं कि, भाई चाहे जितना व्यापार करो, घाटा आए तो हर्ज नहीं, लेकिन मन में एक भाव तय करना कि मुझे सभी को पैसे लौटा देने हैं। क्योंकि पैसा किसे प्यारा नहीं होगा? सभी को प्यारा लगता है। इसलिए, उसका पैसा डूब जाए, अपने मन में ऐसा भाव पैदा होना ही नहीं चाहिए। चाहे कुछ भी हो लेकिन मुझे लौटाना है, ऐसा डिसीज़न पहले से रखना ही चाहिए। यह बहुत बड़ी चीज़ है। किसी और चीज़ में दिवाला निकले तो चलेगा लेकिन पैसे में दिवाला नहीं निकलना चाहिए। क्योंकि पैसा तो दुःखदायी है, पैसे को तो ग्यारहवाँ प्राण कहा है। इसलिए किसी के भी पैसे डूबो नहीं सकते। वह सबसे बड़ी चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य कर्ज़ा छोड़कर मर जाए तो क्या होगा?

दादाश्री : चाहे कर्ज़ा अदा किए बिना मर जाए, लेकिन उसके मन में आखिर तक-मरते दम तक, एक बात तय होनी चाहिए कि मुझे यह पैसे लौटाने ही है। इस जन्म में संभव न हो, तो अगले जन्म में भी मुझे अवश्य लौटाने है। जिसका ऐसा भाव है, उसे कोई कष्ट नहीं आएगा। और कुछ लोग कहते हैं, क्या लेना-देना? कौन पूछने वाला है? तब वहाँ पर वैसा!

नियम ऐसा है कि पैसे लेते समय ही वह तय कर ले कि इसके पैसे मुझे लौटाने हैं, ऐसा तय करके लेना चाहिए। फिर उसके बाद हर चौथे दिन उसे याद करके 'यह पैसे जल्दी से जल्दी लौटा दूँ' ऐसी भावना करे। ऐसी भावना होने पर रुपये लौटा सकेगा, वर्ना राम तेरी माया।

आपने किसी से रुपये उधार लिए हों और आपका भाव शुद्ध रहे, तब समझना कि ये पैसे आप लौटाओगे। फिर उसके लिए चिंता मत करना। भाव शुद्ध रहता है या नहीं, उतना ही ध्यान रखना, यह

उसका लेवल (नाप) है। सामने वाला भाव शुद्ध रखता है या नहीं, उस पर से हम जान जाएँगे। उसका भाव शुद्ध नहीं रहे तो वहीं से हमें समझ लेना चाहिए कि ये पैसे जाने वाले हैं।

भाव शुद्ध होना ही चाहिए। भाव यानी, खुद के अधिकार से आप क्या करोगे? तब कहें कि, 'यदि उतने रुपये होते तो सारे आज ही लौटा देता!' इसका नाम शुद्ध भाव। भाव में तो यही होगा कि जल्दी से जल्दी कैसे लौटा दूँ।

प्रश्नकर्ता : दिवाला निकाले और फिर पैसे नहीं लौटाए तो फिर क्या दूसरे जन्म में चुकाने पड़ेंगे?

दादाश्री : उसे फिर पैसों का संयोग प्राप्त ही नहीं होगा। उसके पास पैसा आएगा ही नहीं। हमारा कानून क्या कहता है कि रुपये लौटाने संबंधी आपका भाव बिगड़ना नहीं चाहिए, तो एक दिन आपके पास रुपया आएगा और कर्ज़ा चुक जाएगा। किसी के पास चाहे कितने भी रुपये हों पर आखिर में रुपया साथ में नहीं आता। इसलिए काम निकाल लो। अब से फिर मोक्षमार्ग नहीं मिलेगा। इक्यासी हज़ार साल तक मोक्षमार्ग हाथ लगने वाला नहीं है। यह आखिरी 'स्टेन्ड' (मुकाम) है, अब आगे 'स्टेन्ड' नहीं है।

पैसों का या फिर और किसी संसारी चीज़ का कर्ज़ा नहीं होता, राग-द्वेष का कर्ज़ा होता है। पैसों का कर्ज़ा होता तो हम ऐसा कहते कि, 'भाई, पाँच सौ पूरे माँग रहा है तो पाँच सौ पूरे लौटा दे, वर्ना तू छूटेगा नहीं।' हम ऐसा कहना चाहते हैं कि, उसका निपटारा करना, पचास देकर भी तू निपटारा कर देना। और उसे पूछ लेना कि, 'तू खुश है न?' और वह कहे कि, 'हाँ मैं खुश हूँ', तो फिर हो गया निपटारा।

जहाँ-जहाँ आपने राग-द्वेष किए होंगे, वे राग-द्वेष आपको वापस मिलेंगे।

जैसे भी हो सारा हिसाब चुका देना। हिसाब चुकाने के लिए यह जन्म है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सबकुछ अनिवार्य है।

एक लेनदार एक आदमी को सता रहा था, वह आदमी मुझे कहने लगा कि, 'यह लेनदार मुझे बहुत गालियाँ सुना रहा था।' मैंने कहा, 'वह आए तब मुझे बुला लेना।' फिर उस लेनदार के आने पर, तब उसका बेटा मुझे बुलाने आया। मैं उस आदमी के घर पहुँचा। मैं बाहर बैठा, भीतर वह लेनदार उसे (आदमी को) कह रहा था, 'आप ऐसी नालायकी करते हैं? यह तो बदमाशी कहलाएगी।' ऐसा-वैसा करके बहुत गालियाँ देने लगा, तब मैंने अंदर जाकर कहा, 'आप लेनदार हैं न?' तब कहे, 'हाँ'। मैंने उसे कहा, "देखो, मैंने देने का ऐग्रीमेन्ट (करार) किया है और आपने लेने का ऐग्रीमेन्ट किया है। और आप जो ये गालियाँ दे रहे हो, वे 'एकस्ट्रा आइटम' (विशेष वस्तु) हैं, उसका पेमेन्ट करना होगा। गालियाँ देने की शर्त करार में नहीं रखी है, प्रत्येक गाली के चालीस रुपये कट जाएँगे। विनय की हद से बाहर बोले तो वह 'एकस्ट्रा आइटम' कहलाएगा, क्योंकि आप करार से बाहर चले हैं।" ऐसा कहने पर वह ज़रूर सीधा हो जाएगा और दोबारा ऐसी गालियाँ नहीं निकालेंगा।

किसी व्यक्ति ने आपको ढाई सौ रुपये नहीं लौटाए और आपके ढाई सौ रुपये गए, उसमें भूल किसकी? आप ही की न? भुगते उसकी भूल। इस ज्ञान से धर्म होगा, इसलिए सामने वाले पर आरोप लगाना, कषाय करना वगैरह, सब छूट जाएगा। अर्थात् 'भुगते उसकी भूल।' यह मोक्ष में ले जाए ऐसा है। एक्ज़ेक्ट है! 'भुगते उसीकी भूल।'

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान उत्पन्न हुआ उससे पहले आपकी भूमिका काफी कुछ तैयार हो गई होगी न?

दादाश्री : भूमिका में तो, मुझे कुछ नहीं आता था। नहीं आने की वजह से ही तो मैट्रिक में नापास होकर पड़े रहे। मेरी भूमिका में चारित्रबल ऊँचा था, इतना मैंने देखा था, फिर भी चोरियाँ की थी। खेतों में बेर आदि होते तब लड़कों के साथ जाते थे। अब पेड़ किसी का और आम हम लें, वह चोरी नहीं कहलाएगी? बचपन में सब लड़के आम खाने जाते, तब हम भी साथ में जाते थे। मैं खाता ज़रूर पर घर पर नहीं ले जाता था। चारित्रबल अच्छा था, इतना जानता था।

दूसरा, जब से व्यापार कर रहा हूँ, तब से मैंने अपने लिए व्यापार के संबंध में विचार ही नहीं किया। हमारा व्यापार चलता हो वैसे चलता रहता था। लेकिन यदि आप वहाँ आते तो सब से पहले में पूछूँ कि 'आपका कैसे चल रहा है? आपको क्या तकलीफ है?' यानी कि आपका समाधान करूँ, बाद में ये भाई आएँ तब उनसे पूछूँ कि आपका कैसे चल रहा है? अर्थात् लोगों की अड़चनों में ही पड़ा था। सारी ज़िंदगी मैंने यही व्यापार किया था, और कोई व्यापार किया ही नहीं, कभी भी।

फिर भी व्यापार में हम बहुत माहिर। किसी मुद्दे पर कोई चार महीने से उलझा हुआ हो तो उसे मैं एक दिन में सुलझा देता।

क्योंकि किसी का भी दुःख मुझ से देखा नहीं जाता था। किसी को नौकरी नहीं मिल रही हो, तो सिफ़ारिशनामा लिख देता। ऐसा-वैसा करके हल निकाल देता।

मैं व्यापार करता था, उसमें हमारे हिस्सेदार के साथ एक नियम बना रखा था, कि अगर मैं नौकरी कर रहा होता, तब वहाँ मुझे जितने पैसे मिलते, उतने ही घर भेजना। उससे ज़्यादा मत भेजना। वे पैसे बिल्कुल खरे होंगे। दूसरे पैसे वहीं व्यापार में ही रहें, ऑफिस में। तब उन्होंने मुझ से पूछा, 'फिर उसका क्या करेंगे?' मैंने कहा, 'इन्कमटैक्स वाला कहे, डेढ़ लाख भर दो। तब वे पैसे दादा के नाम से भर देना। मुझे खत मत लिखना।'

प्रश्नकर्ता : किसी व्यक्ति को हमने पैसे दिए हों और वह नहीं लौटा रहा हो तो उस समय हमें वापस लेने का प्रयत्न करना चाहिए या फिर अपना कर्ज़ा अदा हो गया, ऐसा मानकर संतोष करके बैठे रहना चाहिए?

दादाश्री : वह लौटा सके, यदि ऐसी स्थिति हो तो प्रयत्न करना और नहीं लौटा सके ऐसी स्थिति हो तो छोड़ देना।

प्रश्नकर्ता : प्रयत्न करना या फिर ऐसा समझना कि वह हमें

देने वाला होगा तो घर बैठे दे जाएगा और यदि नहीं आए तो समझ लेना हमारा कर्ज़ा चुक गया, ऐसा मान लें?

दादाश्री : नहीं, नहीं, उस हद तक मानने की ज़रूरत नहीं है। हमें स्वाभाविक प्रयत्न करने चाहिए। हमें उसे कहना चाहिए कि 'हमें ज़रा पैसों की तंगी है, यदि आपके पास आ गए हों तो कृपया हमें भेज देना।' इस तरह विनयपूर्वक कहना चाहिए और नहीं आएँ, तो समझ जाना कि 'अपना कोई हिसाब होगा जो चुक गया। लेकिन यदि हम प्रयत्न ही नहीं करें तो वह हमें मूर्ख समझेगा और उल्टी राह चढ़ जाएगा।

यह संसार तो सारा पज़ल है। इसमें मनुष्य मार खा-खाकर मर जाता है। अनंत अवतार मार खाई और जब छुटकारे का वक्त आए, फिर भी अपना छुटकारा नहीं करता। छूटने का ऐसा वक्त फिर नहीं आएगा न! और जो मुक्त हो चुका है (बंधन से मुक्त हुआ हो) वही हमें मुक्त करवाएगा, बंधन वाला हमें केसे छुड़ाएगा? जो मुक्त हो चुका है, उसका महत्व है। 'यह पैसे नहीं लौटाएगा तो क्या होगा?', ऐसा विचार आने पर हमारा मन निर्बल होता जाएगा। इसलिए किसी को पैसे देने के बाद, तय कर लेना कि काली चिंदी में बाँधकर समंदर में डाल दिए हैं, फिर क्या आप उसकी आशा रखेंगे? देने से पहले ही आशा रखे बिना देना, वर्ना देना ही मत।

ऐसा है न, हमने किसी से लिए होते हैं और किसी को दिए हुए होते हैं। संसार में लेन-देन तो करना ही पड़ता है। हमने कुछ लोगों को रुपये उधार दिए हों, उसमें से किसी ने नहीं लौटाए, तो उसके लिए मन में क्लेश होता रहता है कि, 'वह कब देगा? कब देगा?' अब ऐसे क्लेश करने से क्या फायदा?

हमारे साथ भी ऐसा हुआ था न! पैसे वापस नहीं आएँगे ऐसी चिंता तो हम पहले से ही रखते नहीं थे। लेकिन साधारण टोक देते, उसे (उस व्यक्ति को) कहते ज़रूर थे। हमने एक आदमी को पाँच सौ रुपये दिए थे। अब ऐसी रकम बही-खाते में लिखी नहीं होती

और ना ही चिठ्ठी में दस्तखत आदि होते हैं। फिर उस बात को साल-डेढ़ साल हो गया होगा। मुझे भी कभी याद नहीं आया। एक दिन वह व्यक्ति मुझे मिल गया, तब मुझे याद आया, मैंने कहा कि, 'वे पाँच सौ रुपये भेज देना।' तब उसने कहा, 'कौन से पाँच सौ?' मैंने कहा कि, 'आप मुझ से ले गए थे वे।' उसने कहा कि, 'आपने मुझे कब दिए थे? रुपये तो, मैंने आपको उधार दिए थे, भूल गए क्या?' तब मैं तुरंत समझ गया। फिर मैंने कहा कि, 'हाँ मुझे याद आ रहा है, अब आप कल आकर ले जाना।' फिर दूसरे दिन रुपये दे दिए। वह आदमी गला पकड़े कि आप मेरे रुपये नहीं देते, तो क्या करेंगे? ऐसी घटनाएँ हुई हैं।

इस संसार की बराबरी कैसे करें? आपने किसी को पैसे दिए हों, तो जैसे पैसे काली चिंदी में बाँधकर समुद्र में डालकर फिर उसकी आशा रखना, उस जैसी मूर्खता है। कभी आ जाएँ तो जमा कर लेना और उस दिन उसे चाय-पानी पिलाकर कहना कि, 'भाई, आपका उपकार है जो आप रुपये लौटाने आए, वर्ना इस काल में तो रुपये वापस आने वाले नहीं है। आपने लौटाए वह ग़ज़ब की बात है।' यदि वह कहे कि, 'ब्याज नहीं मिलेगा।' तब कहें, 'मूल लाया यही बहुत है।' समझे आप? ऐसा संसार है। जिसने लिए हैं, उसे लौटाने का दुःख है, उधार देता है उसे वसूली का दुःख है। अब इसमें सुखी कौन? और (सब) है 'व्यवस्थित'! नहीं देता वह भी 'व्यवस्थित' है, और डबल दिए वह भी 'व्यवस्थित' है।

प्रश्नकर्ता : आपने दूसरे पाँच सौ क्यों दिए?

दादाश्री : फिर किसी जन्म में उस भाई के साथ हमारी मुलाकात नहीं हो, इसलिए।

लोगों को पता चला कि मेरे पास पैसे आए हैं, तो लोग मुझ से पैसे माँगने आएँ। तब फिर मैं 1942 से 1944 तक सब को देता रहा। फिर 1945 में मैंने तय किया कि अब हमें तो मोक्ष की ओर जाना है, अब इन लोगों के साथ हमारा मेल कैसे बैठेगा? इसलिए

मैंने सोचा कि यदि उगाही की तो ये वापस रुपये उधार लेने आएँगे और व्यवहार चलता रहेगा। उगाही करेंगे तो पाँच हज़ार लौटाकर फिर दस हज़ार लेने आएँगे, उसके बजाय पाँच हज़ार उसके पास रहेंगे तो उसके मन में होगा कि 'अब ये (दादाजी) नहीं मिले तो अच्छा।' और कभी रास्ते में मुझे देख ले और वह दूसरी ओर से चला जाए, तब मैं भी समझ जाता था। इस तरह मैं छूट गया, मुझे इन सभी को छोड़ना था और इन सभी ने छोड़ दिया मुझे!

नैचरल न्याय क्या कहता है? कि जो हुआ सो करेक्ट, जो हुआ सो ही न्याय। यदि आपको मोक्ष पाना हो तो हुआ सो न्याय समझना और यदि भटकना हो तो कोर्ट के न्याय से निपटारा लाना। कुदरत क्या कहती है? हुआ सो न्याय, ऐसा आप समझ जाओगे, तो आप निर्विकल्प होते जाओगे, और कोर्ट के न्याय से यदि निपटारा लाने गए तो विकल्पी होते जाओगे।

तीन-तीन बार चक्कर लगाए, फिर भी उगाही वाला मिलता नहीं और यदि मिल जाए तो उल्टा वह हम पर चिढ़ जाएगा। यह मार्ग ऐसा है कि उगाही वाला हमे घर बैठे पैसे देने आए। जब पाँच-सात बार उगाही करने पर आखिर में वह कहे कि 'महीने बाद आना', तब भी यदि आपके परिणाम नहीं बदलते तो घर बैठे पैसे आएँगे। लेकिन आपके परिणाम बदल जाते हैं न? 'यह तो कमअक्ल है। नालायक आदमी है, फ़िजूल धक्का खिलाया।' ऐसे, परिणाम बदले हुए होते हैं। फिर से आप जाओगे तो वह गालियाँ देगा। आपके परिणाम बदल जाते हैं, इसलिए सामने वाला नहीं बिगड़ता हो तो भी बिगड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ यह हुआ कि हम ही सामने वाले को बिगाड़ते हैं?

दादाश्री : आपने ही अपना सबकुछ बिगाड़ा है। जितनी भी मुसीबतें हैं, वे सभी आपकी ही खड़ी की हुई हैं। अब उसे सुधारने का रास्ता क्या? सामने वाला कितना भी दुःख दे, लेकिन उसके लिए

ज़रा-सा भी उल्टा विचार नहीं आए, वह उसे सुधारने का रास्ता। इसमें आपका भी सुधरेगा और उसका भी सुधरेगा। संसार के लोगों को उल्टा विचार आए बगैर नहीं रहता, तभी तो हमने समभाव से निपटारा करने को कहा। समभाव से निपटारा यानी क्या कि उसके लिए कुछ भी उल्टा सोचना ही मत।

और उगाही करने जाओ उसके पास नहीं होने के कारण कोई आदमी नहीं लौटा रहा हो, तब फिर आखिर तक उसके पीछे दौड़ते मत रहना। वह बैर बाँधेगा! वह यदि प्रेतयोनि में गया तो परेशान करके रख देगा। उसके पास नहीं हैं इसलिए नहीं देता, उसमें उस बेचारे का क्या गुनाह? होते हैं फिर भी नहीं देते लोग!

प्रश्नकर्ता : हों फिर भी नहीं दें तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हों फिर भी नहीं दें तो क्या कर लेंगे हम उसका? दावा दायर करेंगे, बहुत होगा तो! और क्या? उसे मारेंगे तो पुलिस वाले हमें पकड़कर ले जाएँगे न?

बाकी, कोर्ट में नहीं जाना ही उत्तम है। जो समझदार व्यक्ति होगा वह कोर्ट नहीं जाएगा। मेरा होगा तो आ जाएगा, नहीं आएगा तो गया। लेकिन ऐसी बला को वापस नहीं बुलाएँगे। बिना बात के बलाएँ परेशान करती है। अभी जीतना होगा तो जीत जाएँगे, लेकिन उससे पहले तो, 'बेअक्ल हो, गधे!' कहेगा। यह अक्ल का बोरा! और यह आदमी! गधा नहीं है! सभी जगह ऐसा बोलना चाहिए? अपने यहाँ वे भक्त है न, वकील, वे कहते हैं, हम भी ऐसा कहते हैं। अरे, कैसा बेकार आदमी है वह? यह तो अच्छा है, लोग सीधे है इसलिए सुन लेते हैं, नहीं तो यदि आपको जूता मारे तो क्या कर लोगे?

आपसे कोई रुपये ले जाए और इस बात को तीन-चार साल बीत जाएँ, तब आपकी रकम शायद कोर्ट के कानून से बाहर हो जाए पर नेचर का कानून तो कोई नहीं तोड़ सकता न! नेचर के कानून अनुसार रकम ब्याज सहित वापस आती है। यहाँ के कानून अनुसार कुछ नहीं

मिलेगा, यह तो सामाजिक कानून है। लेकिन उस कुदरत के कानून में तो ब्याज सहित मिलता है। इसलिए यदि कभी कोई हमारे तीन सौ रुपये नहीं लौटाए तो हमें उनसे उगाही करनी चाहिए। वापस लेने का कारण क्या है? यह भाई रकम ही नहीं लौटाता तब कुदरत का ब्याज तो कितना अधिक होता है? सौ-दौ सौ साल में तो कितनी रकम हो जाएगी? इसलिए उगाही करके हमे उनसे वापस ले लेने चाहिए, जिससे बेचारे को उतना भारी जोखिम नहीं उठाना पड़े। लेकिन यदि वह नहीं लौटाए और जोखिम मोल ले तो उसके ज़िम्मेदार हम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कुदरत के ब्याज की दर क्या है?

दादाश्री : नैचुरल इन्टरेस्ट इज़ वन परसेन्ट, हर बारह महीने पर। अर्थात् सौ रुपये पर एक रुपया! अगर वह तीन सौ रुपये नहीं लौटाता तो हर्ज नहीं। आप कहना, हम दोनों दोस्त! हम साथ में पत्ते खेलें। क्योंकि आपकी रकम कहीं जाने वाली नहीं है न! यह नेचर इतना करेक्ट है कि यदि आपका एक बाल भी चुराया होगा, फिर भी वह कहीं जाएगा नहीं। नेचर बिल्कुल करेक्ट है। परमाणु से लेकर परमाणु तक करेक्ट है। अतः यह संसार वकील करने जैसा ही नहीं है। मुझे चोर मिलेगा, लुटेरा मिलेगा ऐसा भय भी रखने जैसा नहीं है। यह तो पेपर में आए कि आज फलाँ को गाड़ी से उतारकर गहने लूट लिए, फलाँ को मोटर में मारा और पैसे ले लिए। 'तो अब सोना पहनना या नहीं पहनना?' डोन्ट वरी! करोड़ रुपयों के रत्न पहनकर घूमोगे, फिर भी आपको कोई छू नहीं सकता। ऐसा यह संसार है। और वह बिल्कुल करेक्ट है। यदि आपकी जोखिमदारी होगी तभी आपको छूएगा। इसलिए हम कहते हैं कि आपका *ऊपरी* (वरिष्ठ, मालिक) कोई बाप भी नहीं है। इसलिए 'डोन्ट वरी!' (चिंता मत करना) निर्भय हो जाओ।

व्यापार में *अणहक्क* का कुछ भी नहीं घुसना चाहिए। और जिस दिन बिना हक़ का लोगे, उस दिन से व्यापार में बरकत नहीं रहेगी। भगवान हाथ डालते ही नहीं। व्यापार में तो आपकी कुशलता और आपकी नीतिमत्ता, ये दो ही काम आएँगे। अनीति से साल-दो

साल ठीक मिलेगा पर फिर नुकसान होगा। गलत हो जाए, तब यदि पछतावा करोगे तो भी छूट जाओगे। व्यवहार का सार यदि कुछ है, तो वह नीति ही है। पैसे कम होंगे लेकिन नीति होगी तो भी आपको शांति रहेगी और यदि नीति नहीं होगी तो, पैसे ज़्यादा होने पर भी अशांति रहेगी। नैतिकता के बिना धर्म ही नहीं। धर्म की नींव ही नैतिकता है।

इसमें ऐसा कहते हैं कि संपूर्ण नीति का पालन कर सके तो करना और पालन नहीं हो सके तो निश्चय करना कि दिन में तीन बार तो मुझे नीति का पालन करना ही है, वर्ना फिर नियम में रहकर अनीति करेगा तो वह भी नीति है। जो व्यक्ति नियम में रहकर अनीति करता है उसे मैं नीति कहता हूँ। भगवान के प्रतिनिधि के तौर पर, वीतरागों के प्रतिनिधि के तौर पर मैं कहता हूँ कि अनीति भी नियम में रहकर कर, वह नियम ही तुझे मोक्ष में ले जाएगा। अनीति करे कि नीति करे, उसका मेरे लिए महत्व नहीं है, लेकिन नियम में रहकर कर। पूरी दुनिया ने जहाँ पर बहुत सख्ती से मना किया है, वहाँ हमने कहा है कि इसमें हर्ज नहीं है, तू तेरे नियम में रहकर कर।

हमने तो ऐसा कहा है कि अनीति कर लेकिन नियम से करना। एक नियम बना कि मुझे इतनी ही अनीति करनी है, इससे ज़्यादा नहीं। दुकान पर रोज़ दस रुपये अधिक लेने हैं, उससे अधिक पाँच सौ रुपये आएँ, फिर भी मुझे नहीं लेने हैं।

यह हमारा गूढ़ वाक्य है। यह वाक्य यदि समझ में आ जाए तो काम हो जाए। भगवान भी खुश हो जाएँगे कि पराए चरागाह में खाना है, फिर भी हिसाब से खाता है! वर्ना यदि पराई चरागाह में खाना हो, तो वहाँ तो फिर सीमा होती ही नहीं न?

आपकी समझ में आता है न? कि 'अनीति का भी नियम रख'। मैं क्या कहता हूँ कि, 'तुझे रिश्वत नहीं लेनी है और तुझे पाँच सौ की कमी है, तो तू कब तक क्लेश करेगा?' लोगों से-मित्रों से रुपये उधार लेता है, उससे और ज़्यादा जोखिम उठाता है। अतः मैं उसे

समझाता हूँ कि 'भाई तू अनीति कर, लेकिन नियम से कर।' अब नियम से अनीति करने वाला नीतिमान से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि नीतिमान के मन में ऐसा रोग घुस जाता है कि 'मैं कुछ हूँ'। जब कि इसके मन में ऐसा कोई रोग नहीं घुसता?

ऐसा कोई सिखाएगा ही नहीं न? नियम से अनीति करना बहुत बड़ा कार्य है।

अनीति भी यदि नियम से हैं तो उसका मोक्ष होगा, लेकिन जो अनीति नहीं करता, जो रिश्वत नहीं लेता उसका मोक्ष कैसे होगा? क्योंकि जो रिश्वत नहीं लेता उसे, 'मैं रिश्वत नहीं लेता' यह कैफ़ चढ़ जाता है। भगवान भी उसे निकाल बाहर करेंगे कि, 'चल जा, तेरा चेहरा खराब दिखता है।' इसका यह अर्थ नहीं है कि हम रिश्वत लेने को कह रहे हैं, लेकिन यदि तुझे अनीति ही करनी हो तो तू नियम से करना। नियम बना कि भाई मैं रिश्वत में पाँच सौ रुपये ही लूँगा। पाँच सौ से ज़्यादा कोई कुछ भी दे, अरे पाँच हज़ार रुपये दे, तो वे भी वापस कर दूँगा। घर खर्च में जितने कम पड़ते हों उतने ही, पाँच सौ रुपये ही रिश्वत के लेना। बाकी, ऐसा जोखिम तो हम ही लेते हैं। क्योंकि ऐसे काल में लोग रिश्वत नहीं लें तो क्या करें बेचारे? तेल-घी के दाम कितने बढ़ गए हैं। शक्कर के दाम कितने ज़्यादा हैं? तब क्या बच्चों की फ़ीस के पैसे दिए बिना चलेगा? देखो न! तेल का भाव सत्रह रुपये बताते हैं न!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जो व्यापारी काला बाज़ार करते हैं, उनका गुज़ारा होता है जब कि नौकरों का रक्षण करने वाला कोई रहा ही नहीं? इसीलिए हम कहते हैं कि रिश्वत भी नियम से लेना, तो वह नियम तुझे मोक्ष में ले जाएगा। रिश्वत बाधक नहीं है, अनियम बाधक है।

प्रश्नकर्ता : अनीति करना तो गलत ही कहलाएगा न?

दादाश्री : वैसे तो उसे गलत ही कहते हैं न! लेकिन भगवान के घर तो अलग ही तरह की परिभाषा है। भगवान के यहाँ तो नीति

या अनीति, इसका झगड़ा ही नहीं है। वहाँ पर तो अहंकार की ही तकलीफ़ है। नीति पालने वालों में अहंकार बहुत होता है। उसे तो बगैर मदिरा के कैफ़ चढ़ा हुआ होता है।

प्रश्नकर्ता : अब रिश्वत में पाँच सौ लेने की छूट दी तो फिर जैसे-जैसे ज़रूरत बढ़ती जाए तो फिर वह रकम भी अधिक ले तो?

दादाश्री : नहीं, वह तो एक ही नियम, पाँच सौ यानी पाँच सौ ही, फिर उस नियम में ही रहना होगा।

इस समय में कोई इन सब मुश्किलों में कैसे दिन गुज़ारे? और फिर उसकी रुपयों की कमी पूरी नहीं होगी तो क्या होगा? उलझन पैदा होगी कि रुपये कम पड़ रहे हैं, वे कहाँ से लाएँ? यह तो उसे जितनी कमी थी उतने आ गए। उसकी भी पज़ल फिर सोल्व हो गई न? वर्ना इसमें से व्यक्ति उल्टा रास्ता चुनकर उस पर चलने लगेगा और फिर पूरी रिश्वत लेने लगेगा। उसके बजाय यह बीच का रास्ता निकाला है। वह अनीति करे फिर भी नीति कहलाए और उसे भी सरलता हो गई कि यह नीति कहलाती है और उसका घर भी चले।

मूलतः वास्तव में मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह यदि समझ में आ जाए तो कल्याण हो जाए। प्रत्येक वाक्य में मैं क्या कहना चाहता हूँ, यह पूरी बात यदि समझ में आए तो कल्याण हो जाए। लेकिन यदि वह बात को खुद की भाषा में ले जाए तो क्या होगा? प्रत्येक की अपनी स्वतंत्र भाषा होती ही है, वह ले जाकर खुद की भाषा में फिट कर देता है, लेकिन यह उसकी समझ में नहीं आएगा कि 'नियम से अनीति कर।'

हम भी व्यापारी व्यक्ति हैं। हमें भी संसार में व्यापार-रोज़गार, इन्कम टैक्स सब हैं। हम कॉन्ट्रैक्ट का नंगा व्यापार करते हैं। फिर भी हम उसमें संपूर्ण 'वीतराग' रहते हैं। ऐसे 'वीतराग' कैसे कहलाते हैं? 'ज्ञान से'। अज्ञान से लोग दुःखी हो रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : 'गलत' करने की इच्छा नहीं है, फिर भी करना पड़ता है।

दादाश्री : जो अनिवार्य करना पड़ता है, उसके लिए पछतावा होना चाहिए। आधा घंटा बैठकर पछतावा करना चाहिए कि, 'यह नहीं करना है फिर भी करना पड़ता है।' आपने पछतावा ज़ाहिर किया यानी गुनाह से मुक्त हुए। यह तो हमारी इच्छा नहीं होने के बावजूद भी, अनिवार्यतः करना पड़ता है। उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। 'ऐसा ही करना चाहिए' कहा तो उसका उल्टा परिणाम आएगा। ऐसा करके खुश होते हैं; ऐसे भी लोग हैं न? यह तो आप मंदकर्मी (सरलता) हो, इसलिए आपको ऐसा पछतावा होता है, वर्ना लोगों को तो पछतावा भी नहीं होता।

अधिक धन हो तो भगवान या सीमंधर स्वामी के मंदिर में देने योग्य है, दूसरा एक भी स्थान नहीं है और कम पैसे हों तो महात्माओं को भोजन कराने जैसा दूसरा कुछ भी नहीं है। और उससे भी कम हो तो किसी दुखिए को देना और वह भी नकद नहीं, खाने-पीने का सामान आदि पहुँचाना। अब कम पैसों में भी दान करना हो तो पुसाएगा या नहीं?

[4] ममता रहितता

अपने पाप में कोई हिस्सेदारी नहीं करता। आप बेटे से पूछो कि, 'भाई, हम ये चोरियाँ कर-करके धन कमाते हैं।'। तब वह कहेगा, 'आपको कमाना हो तो कमाइए, हमें ऐसा नहीं चाहिए।' पत्नी भी कहेगी, 'सारी ज़िंदगी उल्टे-सीधे किए हैं, अब छोड़ दीजिए न।' फिर भी ये मूर्ख नहीं छोड़ेगा।

जब से किसी को देना सीखा तभी से सद्बुद्धि उत्पन्न हुई। अनंत जन्मों से देना सीखा ही नहीं। जूठन देना भी उसे पसंद नहीं है, ऐसा है मनुष्य का स्वभाव! ग्रहण करने की ही उसे आदत है! जब जानवर में था, तब भी ग्रहण करने की ही आदत, देने का नहीं! वह जब से देना सीखता है, तभी से मोक्ष की ओर मुड़ता है।

चेक आया तभी से समझो न, कि इसे भुनाऊँगा तो पैसे आएँगे! यह तो (पुण्य का) चेक लेकर आए थे और वह आज भुनाया आपने! भुनाया उसमें क्या मेहनत की आपने? इस पर लोग कहते हैं, 'मैं

इतना कमाया, मैंने मेहनत की!' अरे! एक चेक भुनाया उसे क्या मेहनत करना कहेंगे? वह भी फिर, जितने का चेक होगा, उतना ही प्राप्त होगा। उससे ज़्यादा नहीं मिलेगा न? यह आपको समझ में आया?

मेरा कहना है कि गंभीरता रखो, शांति रखो, क्योंकि जिस *पूरण-गलन* के लिए लोग दौड़धूप कर रहे हैं, गुणाकार-भागाकार कर रहे हैं, वे सभी खुद के जन्म बिगाड़ रहे हैं और बैंक-बैलेन्स में कोई बदलाव हो सके ऐसा नहीं है, वह नैचरल (कुदरती) है। नैचरल में क्या कर सकते हैं? इसलिए हम आपका यह भय भगाते हैं। हम 'जैसा है वैसा' खुला कर रहे हैं कि जोड़ना-घटना (कमाना या गँवाना) किसी के हाथ में नहीं है, वह नेचर के हाथों में है। बैंक में जोड़ना भी नेचर के हाथ में और बैंक में घटाना भी नेचर के हाथ में है। वर्ना बैंक वाले एक ही खाता रखते। सिर्फ क्रेडिट ही रखे, डेबिट रखते ही नहीं।

किसी के भी साथ किच-किच मत करना। और फिर वैसे लोग तो कभी कभार ही मिलते हैं! अब उनके साथ झगड़कर क्या मिलेगा? एक ही बार कहना कि 'भगवान को तो याद कर' तब यदि वह कहे, 'भगवान-वगवान क्या?' ऐसे शब्द निकलें तो समझ लेना कि यह हुल्लड़ वाला है।

लाचारी जैसा दूसरा पाप नहीं है! लाचारी नहीं होनी चाहिए। नौकरी नहीं मिल रही हो तो लाचारी, घाटा हुआ तब भी लाचारी, इन्कमटैक्स ऑफिसर धमकाए तब भी लाचारी, अरे! लाचारी क्यों करता है? बहुत हुआ तो पैसे ले जाएगा, घर ले जाएगा। और क्या ले लेगा? फिर लाचारी क्यों? लाचारी तो भयंकर अपमान है भगवान का। हम लाचारी करें तो भीतर भगवान का भयंकर अपमान होता है। लेकिन क्या करे भगवान?

व्यवहारिक कानून क्या है! शेयरबाज़ार में घाटा हुआ हो तो उसकी किराना बाज़ार से भरपाई मत करना। शेयरबाज़ार से ही भरपाई करना।

बहुत सारे मच्छर होंगे तो भी सारी रात सोने नहीं देंगे और दो

होंगे तो भी सारी रात सोने नहीं देगे। तो हम कहें कि 'हे मच्छरमय दुनिया! दो ही सोने नहीं देते हो तो सारे एक साथ आओ न!' ये नफा-नुकसान, मच्छर ही कहलाते हैं। मच्छर तो आते ही रहेंगे। आप उन्हें उड़ाते रहो और सो जाओ।

भीतर अनंत शक्ति है। वे शक्ति वाले क्या कहते हैं कि 'हे चंदूभाई। आपका क्या विचार है?' तब भीतर, बुद्धि कहती है कि 'इस व्यापार में इतना घाटा हुआ है। अब क्या होगा? अब नौकरी करके घाटा पूरा करो न।' भीतर अनंत शक्ति वाले क्या कहते हैं, 'हमसे पूछो न, बुद्धि की सलाह क्यों लेते हो? हमसे पूछो न, हमारे पास अनंत शक्ति है। जो शक्ति घाटा करवाती है, उसी शक्ति से नफा खोजो! घाटा कराती है दूसरी शक्ति और नफा खोजते हैं और कहीं। इससे तालमेल कैसे बैठेगा?' भीतर अनंत शक्ति है। आपका 'भाव' परिवर्तित नहीं हुआ तो इस संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो आपकी इच्छानुसार नहीं चले। ऐसी अनंत शक्ति हम सबके भीतर है। लेकिन किसी को दुःख नहीं हो, किसी की हिंसा नहीं हो, हमारे लॉ (कानून) ऐसे होने चाहिए। हमारे भाव का लॉ इतना सख्त होना चाहिए कि देह जाए लेकिन हमारा भाव नहीं टूटे। देह भले ही चली जाए, उसमें कुछ डरने की ज़रूरत नहीं है। इसी तरह डरते रहें तो लोगों की हालत खराब हो जाएगी, कोई सौदा ही नहीं करेंगे न! हमने तो ऐसे बड़े-बड़े दलाल देखें हैं, जो चालीस लाख रुपये की उगाही की बातें करते हैं और ऊपर से ऐसा कहते हैं कि, दादाजी, अधिकतर सभी लोग उल्टा बोलते (डरातें) हैं, तो क्या होगा? तब मैंने कहा, ज़रा धीरज रखनी पड़ेगी, नींव मज़बूत होनी चाहिए। रास्ते पर गाड़ियाँ इतनी तेज़ चलती हैं, फिर भी सब सलामत रहते हैं, तब क्या व्यापार में से सेफ (सलामत) नहीं निकलेंगे? रास्ते पर, ज़रा ज़रा देर में टकरा जाएँगे ऐसा लगता है, लेकिन टकराते नहीं। क्या सभी टकरा जाते हैं? यानी जिस जगह घाव लगे उसी जगह भर जाएगा, इसलिए जगह मत बदलना। नियम भी यही है।

हमारी जो-जो शक्ति हो उससे हमें ओब्लाइज करना चाहिए। तरीक़ा चाहे कोई भी हो, सामने वाले को, सभी को सुख पहुँचाना।

सुबह तय करना चाहिए कि मुझे जो भी कोई मिले, उसे कुछ न कुछ सुख पहुँचाना है। पैसे नहीं दे पाएँ तो अन्य कई रास्ते हैं। समझा सकते हैं, कोई उलझन में हो तो धैर्य बंधा सकते हैं और पैसे भी पाँच-पचास डौलर तो दे सकते हैं न!

जो जितनी ज़िम्मेदारी से परायों का करता है, वह खुद का ही करता है।

प्रश्नकर्ता : परायों का करे, वह खुद का ही करता है। यह किस तरह?

दादाश्री : सभी आत्माएँ एक ही स्वभाव के हैं। इसलिए जो परायों की आत्मा के लिए करे वह खुद की आत्मा को पहुँचे। और जो परायों की देह के लिए करता है, वह भी पहुँचता है। हाँ, जो सिर्फ आत्मा के लिए करे, वह दूसरी तरह से पहुँचता है, मोक्ष में जाने का रास्ता खुल जाता है। और यदि सिर्फ देह के लिए करे तो यहाँ सुख भोगता रहता है। अर्थात्, सिर्फ इतना फर्क है।

प्रश्नकर्ता : मेरे मामा ने मुझे व्यापार में फँसाया है, वह जब-जब याद आता है तब मुझे मामा के लिए बहुत उद्वेग होता है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया होगा? मैं क्या करूँ? कोई समाधान नहीं मिलता?

दादाश्री : ऐसा है कि भूल तेरी है, इसलिए तुझे तेरे मामा ने फँसाया। जब तेरी भूल नहीं रहेगी तब तुझे कोई फँसाने वाला नहीं मिलेगा। जब तेरी भूलें खत्म हो जाएँगी, तब तुझे फँसाने वाला नहीं मिलेगा। जब तक आपको फँसाने वाले मिलते हैं न, तब तक आपकी ही भूलें हैं। मुझे (दादाजी को) क्यों कोई फँसाने वाला नहीं मिलता? मुझे फँसना है, फिर भी मुझे कोई नहीं फँसाता और तुझे कोई फँसाने आए तो तू छटक जाता है! लेकिन मुझे तो छटकना भी नहीं आता। अर्थात् आपको कोई कहाँ तक फँसाएगा? जब तक आपके बहीखाते का कुछ हिसाब बाकी है, लेन-देन का हिसाब बाकी है, तभी तक आपको फँसाएँगे। मेरे बहीखाते के सारे हिसाब चुक गए हैं। कुछ समय पहले तो मैं लोगों से यहाँ तक कहता था कि भाई जिसे भी

पैसे की तंगी हो, तो मेरे पास आकर ले जाना। लेकिन मुझे एक थप्पड़ लगाकर मुझ से पाँच सौ ले जाना। तब वे लोग कहें कि, नहीं भाई साहब, इस तंगी से तो मैं भले ही कुछ भी करूँगा, लेकिन यदि आपको मैं थप्पड़ मारूँ तो मेरी क्या दशा होगी? अब यह बात हर किसी से नहीं की जा सकती, कुछ डेवेलप्ड लोगों से ही ये बातें की जा सकती हैं।

अर्थात् वर्ल्ड (संसार) में कोई तुझे फँसाने वाला नहीं है क्योंकि वर्ल्ड का तू मालिक है, तेरा कोई *ऊपरी* है ही नहीं। सिर्फ खुदा ही तेरे *ऊपरी* है, लेकिन यदि तू खुद को पहचान ले तो फिर कोई तेरा *ऊपरी* है ही नहीं। फिर कौन फँसाने वाला है वर्ल्ड में? कोई हमारा नाम लेने वाला नहीं है। लेकिन देखो न, कितना सारा फँसाव हो गया है!

इसलिए, ऐसा मन से निकाल देना कि 'मामा ने मुझे फँसाया है' और व्यवहार में कोई पूछे तब ऐसा मत कहना कि 'मैंने उन्हें फँसाया था, इसलिए उन्होंने मुझे फँसाया!' क्योंकि लोग यह विज्ञान नहीं जानते, इसलिए उनकी भाषा में बात करनी चाहिए कि 'मामा ने ऐसा किया।' लेकिन अंदर समझना कि 'इसमें मेरी ही भूल थी।' यह 'दादा' कह रहे थे वह ही बात सही है और यह बात भी सही है न। क्योंकि मामा आज भुगत नहीं रहे, वे तो गाड़ी लाकर मज़े लूट रहे हैं। जब कुदरत उन्हें पकड़ेगी, तब उनका गुनाह साबित होगा और आज तो कुदरत ने तुझे पकड़ा है न!

दुकान पर नहीं जाओगे तो दुकान खुश नहीं होगी। दुकान खुश होगी तो कमाई होगी। उसी प्रकार यहाँ सत्संग में, आपके पास अधिक समय नहीं हो तो भी पाँच-दस मिनट आकर दर्शन कर जाना, यदि हम यहाँ पर हैं तो! हाज़िरी तो देनी ही रही न!

यानी यह तो दादाजी का ब्लेन्क चेक, कोरा चेक कहलाता है। उसे बार-बार भुनाने जैसा नहीं है, खास अड़चन आए, तभी ज़ंजीर खींचना। सीगरेट का पेकेट गिर जाए और हम गाड़ी की ज़ंजीर खींचे तों जुर्माना होगा या नहीं होगा? अतः ऐसा दुरुपयोग मत करना।

प्रश्नकर्ता : आजकल टैक्स इतने बढ़ गए हैं कि चोरी किए बिना बड़े व्यापार का समतोलन नहीं हो पाता। सभी रिश्वत माँगते हैं तो उसके लिए चोरी तो करनी ही पड़ेगी न?

दादाश्री : चोरी करो लेकिन आपको पछतावा होता है या नहीं? पछतावा होगा तो भी वह हलका हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ऐसे संयोगों में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : जहाँ आपको लगे कि यह गलत हो रहा है, वहाँ हार्टिली पछतावा करना। दुःख होना चाहिए तभी छूटा जा सकेगा। आज कुछ काले बाज़ार का माल लाए तो फिर उसे काले बाज़ार में ही बेचना होगा। तब चंदूलाल से कहना कि 'प्रतिक्रमण करो'। हाँ, पहले प्रतिक्रमण नहीं करते थे इसलिए कर्म के इतने सारे तालाब भरे। अब प्रतिक्रमण करके शुद्ध कर देना हैं। लोभ किस निमित्त से होता है? यदि लोहा काले बाज़ार में बेचा तो आप चंदूलाल से कहना, "चंदूलाल, बेचो इसमें हर्ज नहीं है, वह 'व्यवस्थित' के अधीन है। लेकिन अब उसका प्रतिक्रमण कर लो और कहना कि दुबारा ऐसा नहीं होना चाहिए।"

यदि एक आदमी कहे, 'मुझे धर्म नहीं चाहिए। भौतिक सुख चाहिए' तो उसे मैं कहूँगा, 'प्रामाणिक रहना, नीति का पालन करना।' मंदिर जाने को नहीं कहूँगा। दूसरों को तू देता है, वह देवधर्म है। लेकिन दूसरों का, *अणहक्क* नहीं लेता, यह मानवधर्म है। अर्थात् प्रामाणिकता यह सबसे बड़ा धर्म है। डिसऑनेस्टी इज़ द बेस्ट फूलिशनेस (अप्रामाणिकता यानी सर्वोत्तम मूर्खता है)। लेकिन यदि ऑनेस्ट नहीं रह पाता, तो क्या मैं समुद्र में कूद जाऊँ? दादाजी सिखाते हैं कि डिसऑनेस्टी का प्रतिक्रमण करो। अगला जन्म तुम्हारा उजला हो जाएगा। डिसऑनेस्टी को डिसऑनेस्टी समझो और उसका पश्चाताप करो। पश्चाताप करने वाला मनुष्य ऑनेस्ट है, यह तय है।

अनीति से पैसे कमाता है, वह सब है तो उसके उपाय बताए गए हैं। अनीति से पैसे कमाए तो 'चंदूलाल' से रात को क्या कहना है कि बार-बार प्रतिक्रमण करो। अनीति से क्यों कमाये? इसके लिए

प्रतिक्रमण करो। रोज़ाना 400–500 प्रतिक्रमण करवाना। खुद शुद्धात्मा को नहीं करने हैं। 'चंदूलाल' से करवाने हैं। जिसने अतिक्रमण किया उससे प्रतिक्रमण करवाना।

अभी भागीदार के साथ मतभेद हो जाए तो तुरंत आपको पता चल जाएगा कि यह ज़रूरत से ज़्यादा बोल दिया, तो तुरंत उसके नाम का प्रतिक्रमण कर लेना। हमारा प्रतिक्रमण कैश पेमेन्ट (नकद होना चाहिए। यह बैंक भी कैश कहलाता है और पेमेन्ट भी केश कहलाता है।

इस संसार में अंतराय कैसे पड़ते हैं, वह मैं आपको समझाता हूँ। आप जिस ऑफिस में नौकरी करते हैं, वहाँ आपके असिस्टन्ट (सहायक) को बेअक्ल कहा, तो उससे आपकी अक्ल पर अंतराय पड़ा। बोलो, अब सारा संसार इस अंतराय में फँसकर इस मनुष्य जन्म को व्यर्थ गँवा देता है! आपको 'राइट' (अधिकार) ही नहीं है, सामने वाले को बेअक्ल कहने का। आप ऐसा बोलेंगे इसलिए सामने वाला भी उल्टा बोलेगा, इससे उसे भी अंतराय पड़ेगा। बोलो अब, इस संसार में अंतराय पड़ने कैसे बंद होंगे? किसी को आपने नालायक कहा तो आपकी काबलियत पर अंतराय पड़ता है। यदि आप तुरंत ही इसका प्रतिक्रमण कर लो तो अंतराय पड़ने से पहले धुल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : नौकरी के फर्ज़ अदा करते, मैंने बहुत कड़ाई से लोगों के अपमान किए थे, दुत्कार दिया था।

दादाश्री : उन सभी का प्रतिक्रमण करना। उसमें आपका इरादा बुरा नहीं था, अपने खुद के लिए नहीं, सरकार के लिए किया था सब। इसलिए वह सिन्सीयारीटी (निष्ठा) कहलाएगी।

[5] लोभ से कायम है संसार

जो चीज़ प्रिय हो गई हो उसी में मूर्छित रहना, उसका नाम लोभ। वह मिल जाए फिर भी संतोष नहीं होता। लोभी तो, सुबह जागे तब से लेकर रात को आँख मुँदने तक, लोभ में ही रहता है। उसे लोभी कहते हैं। सुबह जागे, तभी से लोभ की ग्रंथि जैसा दिखाए

वैसा करता रहता है। लोभी हँसने में भी वक्त नहीं बिगाड़ता, सारा दिन लोभ में ही रहता है। मार्केट में जाए तभी से लोभ, लोभ, लोभ, लोभ! बिना बात के पूरे दिन घूमता रहता है। लोभी, सब्ज़ी बाज़ार जाए तब उसे पता होता है कि इस तरफ महंगी सब्ज़ियाँ मिलती हैं और इस तरफ सस्ती ढेरियाँ बिकती हैं। तो फिर सस्ती ढेरियाँ खोज निकालता है और रोज़ उसी तरफ सब्ज़ी लेने जाता है।

लोभी व्यक्ति भविष्य के लिए सबकुछ जमा करता है। फिर जब बहुत जमा हो जाता है, तब दो बड़े-बड़े चूहे घुस जाते हैं और सबकुछ साफ कर लेते हैं!

लक्ष्मी जमा करने की इच्छा के बगैर जमा करना। लक्ष्मी आए तो रोकना मत और नहीं आए तो गलत उपायों से उसे खींचना मत।

लक्ष्मी जी तो अपने आप आने के लिए बंधी हुई है। ऐसे हमारे संग्रह करने से संग्रहित नहीं होती कि आज संग्रह करें और पच्चीस साल बाद, बेटी के विवाह के समय तक रहेगी। उस बात में कुछ नहीं रखा है। यदि कोई ऐसा माने तो वह बिल्कुल गलत है। वह तो, उस दिन जो मिले, वही ठीक। फ्रेश होना चाहिए।

अतः जो वस्तुएँ मिलें उनका उपयोग करना, फेंक मत देना। सद्रास्ते इस्तेमाल करना। बहुत जमा करने की इच्छा मत रखना। जमा करने का एक नियम होना चाहिए कि भाई अपनी पूँजी इतनी तो होनी चाहिए। फिर उतनी पूँजी रखकर, बाकी की योग्य जगह पर खर्च करना। लक्ष्मी को फेंक नहीं देनी है।

लोभ का प्रतिपक्ष शब्द है संतोष। पूर्वजन्म में जो थोड़ा-बहुत ज्ञान समझा हो, आत्मज्ञान नहीं पर संसारी ज्ञान समझा हो, उसमें संतोष उत्पन्न हुआ होता है। और जब तक यह नहीं समझता, तब तक लोभ रहा करता है।

अनंत जन्मों तक खुद ने इतना कुछ भोगा होता है, उसका फिर उसे संतोष रहता है कि अब कुछ नहीं चाहिए। और जिसने नहीं भोगा

हो, उसमें कितनी ही तरह के लोभ घुस जाते हैं। फिर उसे 'यह भोग लूँ, वह भोग लूँ', ऐसा रहा करता है।

प्रश्नकर्ता : लोभी थोड़े कंजूस भी होते हैं न?

दादाश्री : नहीं। कंजूस, वे अलग हैं। कंजूस तो, उसके पास पैसे नहीं होते, इसलिए कंजूसी करता है। और लोभी तो घर में पच्चीस हज़ार पड़े हों फिर भी गेहूँ चावल कैसे सस्ते मिलें, घी कैसे सस्ता मिले, ऐसे जहाँ-तहाँ उसका चित्त लोभ में ही रहता है। सब्ज़ी बाज़ार में जाए तो भी किस जगह सस्ती ढेरियाँ मिलती हैं, वही खोजता रहता है!

लोभी किसे कहते हैं कि जो हर एक बाबत में जाग्रत हो।

प्रश्नकर्ता : लोभी और कंजूस में क्या फर्क है?

दादाश्री : कंजूस तो केवल लक्ष्मी की ही कंजूसी करता है। लोभी तो हर तरफ से लोभ में रहता है। मान का भी लोभ करे और लक्ष्मी का भी करता है। लोभी को हर दिशा का लोभ रहता है, वह सबकुछ खींच जाता है।

प्रश्नकर्ता : लोभी बनें या किफ़ायती?

दादाश्री : लोभी बनना गुनाह है। किफ़ायती बनना गुनाह नहीं है।

'इकोनोमी' (किफ़ायत) किसे कहते हैं? तंगी हो तब तंगी और ठंडा हो तब ठंडा। कभी भी कर्ज़ लेकर कार्य नहीं करना चाहिए। कर्ज़ लेकर व्यापार कर सकते हैं, लेकिन मौज-मस्ती नहीं कर सकते। कर्ज़ लेकर कब खाना चाहिए? जब मरने का वक्त आए तब, लेकिन कर्ज़ लेकर घी नहीं पी सकते।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, कंजूसी और किफ़ायत में अंतर है क्या?

दादाश्री : हाँ, बड़ा अंतर है। हज़ार रुपये महीना कमाते हों तो आठ सौ रुपयें खर्च करना, और पाँच सौ आते हों तो चार सौ का खर्चा रखना, इसका नाम किफ़ायत। जब कि कंजूस तो चार सौ, तो चार सौ ही खर्च करेगा, फिर भले ही हज़ार आएँ या दो हज़ार आएँ। वह टैक्सी में नहीं जाएगा। किफ़ायत तो, इकोनोमिक्स-अर्थशास्त्र है।

किफ़ायती तो भविष्य की मुश्किलों को ध्यान में रखता है। कंजूस को देखकर दूसरों को चिढ़ होती है कि कंजूस है। किफ़ायती को देखकर चिढ़ नहीं होती।

घर में किफ़ायत कैसी होनी चाहिए? बाहर खराब नहीं दिखें ऐसी किफ़ायत होनी चाहिए। किफ़ायत रसोई में नहीं पहुँचनी चाहिए। उदार किफ़ायत होनी चाहिए। रसोई में किफ़ायत घुसी तो मन बिगड़ जाएगा, कोई महेमान आए तो भी मन बिगड़ जाएगा कि चावल खत्म हो जाएँगे! कोई बहुत फ़ज़ूलखर्ची हो, उसे हम कहें कि 'नोबल' किफ़ायत करो।

पैसे कमाने की भावना करने की ज़रूरत नहीं है, प्रयत्न भले ही जारी रहें। भावना से क्या होगा? 'पैसे मैं खींच लूँ' तो सामने वाले के हिस्से में नहीं रहेंगे फिर। इसलिए जो कुदरती क्वोटा (हिस्सा) निर्माण हुआ है उसी को रहने दो न! लोभ यानी क्या? दूसरों का हड़प लेना। फिर कमाने की भावना करने की ज़रूरत ही क्या है? मरने वाला है उसे मारने की भावना करने की क्या ज़रूरत? ऐसा मैं कहना चाहता हूँ। लोगों के कईं पाप होने से रुक जाए, ऐसा मैं कहना चाहता हूँ, इस एक वाक्य में!

लोभ के कारण जो आचरण होता है न, वह आचरण ही उसे जानवर योनि में ले जाता हैं।

आप अच्छे व्याक्ति हो, और यदि आप नहीं ठगे जाओगे तो और कौन ठगे जाएँगे? नालायक तो नहीं ठगा जाएगा। उनका तो, जैसे साँप के घर साँप गया और जीभ चाटकर वापस आया, ऐसा! ठगे जाएँ तभी हम खानदान कहलाएँगे न! हमें जो 'आईए, पधारिए!' कहते हैं न, वह तो उसका प्रीपेमेन्ट है।

इसलिए 'लोभी द्वारा ठगे जाए' ऐसा लिखा है। क्योंकि ठगे जाकर मुझे मोक्ष में जाना है। मैं यहाँ पर पैसे जमा करने नहीं आया हूँ। और मैं यह भी जानता हूँ कि वे नियम के अधीन ठगते हैं या अनियम से। मैं यह जानकर बैठा हूँ इसलिए हर्ज नहीं।

मैं भोलेपन से नहीं ठगा गया। मुझे मालूम है कि ये सभी मुझे ठग रहे हैं। मैं जान-बूझकर धोखा खाता हूँ। भोलेपन से ठगे जाने वाले पागल कहलाते हैं। हम कहीं भोले होते होंगे? जो जान-बूझकर ठगे जाएँ, वे भोले होंगे क्या?

हमारे हिस्सेदार ने एक बार मुझ से कहा कि, 'आप के भोलेपन का लोग फ़ायदा उठाते हैं।' तब मैंने कहा कि, 'आप मुझे भोला समझते हैं, इसलिए आप ही भोले हैं। मैं समझकर ठगा जाता हूँ।' तब उन्होंने कहा कि, 'मैं दुबारा ऐसा नहीं बोलूँगा।'

मैं समझता हूँ कि इस बेचारे की मति ऐसी है। उसकी नीयत ऐसी है। इसलिए उसे जाने दो। 'लेट गो' करो न! हम कषायों से मुक्त होने आए हैं। कषाय नहीं हों, इसलिए हम ठगे जाते हैं, दूसरी बार भी ठगे जाते हैं। जान-बूझकर ठगे जाने में मज़ा है या नहीं? जान-बूझकर ठगे जाने वाले कम होंगे न?

बचपन से ही मेरा प्रिन्सिपल (सिद्धांत) रहा है कि जान-बूझकर ठगा जाना। बाकी मुझे कोई मूर्ख बनाकर जाए और ठगकर जाए, उस बात में दम नहीं।

ऐसे जान-बूझकर ठगे जाने से क्या हुआ? ब्रेन टॉप पर गया। बड़े-बड़े जजों का ब्रेन काम नहीं करे, वैसे हमारा ब्रेन काम करने लगा।

श्रीमद् राजचंद्र ने पुस्तक में लिखा है कि ज्ञानी पुरुष की तन-मन और धन से सेवा करना। तब किसी ने पूछा, 'भाई, ज्ञानी पुरुष को धन का क्या काम? वे तो किसी चीज़ के इच्छुक ही नहीं होते।' तब कहे, ऐसा नहीं, तन-मन से आप सेवा करते हैं लेकिन वे आपसे कहें कि 'इस अच्छी जगह पर धन खर्च दो, तो आपकी लोभ की ग्रंथि टूट जाएगी। वर्ना आपका चित्त लक्ष्मी में ही रहेगा।

एक भाई मुझ से कहते हैं, 'मेरा लोभ निकाल दीजिए, मेरी लोभ की ग्रंथि बहुत बड़ी है! उसे निकाल दीजिए।' मैंने कहा, 'ऐसे निकालने से नहीं निकलेगी। वह तो कुदरती पचास लाख का घाटा

होने पर लोभ की ग्रंथि अपने आप कम हो जाएगी।' कहेंगे, 'अब पैसे चाहिए ही नहीं!'

अर्थात् यह लोभ की ग्रंथि तो घाटा आने पर जाएगी। बड़ा नुकसान हो जाए तो ग्रंथि तेज़ी से टूट जाएगी। वर्ना सिर्फ लोभ की ग्रंथि ही कम नहीं होती, दूसरी सभी ग्रंथियाँ कम हो जाती हैं। लोभ के दो गुरु, एक ठग और दूसरा घाटा। जब घाटा आए तो लोभ की ग्रंथि को तेज़ी से तोड़ देता है। और दूसरा, लोभी को उसका गुरु मिल जाता है, ठग! हथेली में चाँद दिखाएँ ऐसे ठग होते हैं। तब वह लोभी खुश हो जाता है। फिर वे सारी पूँजी ही उड़ा ले जाते हैं।

मुझ से लोग पूछते हैं कि, 'समाधि सुख कब बरतेगा?'। तब मैं कहता हूँ, 'जिसे कुछ भी नहीं चाहिए, लोभ की सारी ग्रंथियाँ छूट जाएँगी, तब।' लोभ की ग्रंथि छूटने पर सुख बरतता रहेगा। बाकी, ग्रंथि वाले को कोई सुख होता ही नहीं न! इसलिए औरों के लिए लुटा दो, जितना औरों के लिए लुटाया उतना आपका!

जितने पैसे आएँ उतने ही अच्छे काम में खर्च कर दे, वह सुखिया। उतने आपके खाते में जमा होंगे, वर्ना गटर में तो जाएँगे ही। कहाँ चले जाएँगे? गटर में जाते होंगे? मुंबई के सारे रुपये कहाँ जाते होंगे? वे सारे गटर में बहते रहते हैं। जितने अच्छे काम में खर्च हुए उतने रुपये अपने साथ आते हैं। अन्य कुछ भी साथ नहीं आता है।

जहाँ तिरस्कार और निंदा है, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहेगी। 'लक्ष्मी कब नहीं मिलती? लोगों की बुराई और निंदा में पड़ें तब।

यह हमारा देश कब अमीर होगा? कब लक्ष्मीवान और सुखी होगा? जब निंदा और तिरस्कार बंद हो जाएँगे तब। ये दोनों बंद हुए कि देश में अपार पैसा और लक्ष्मी होगा!

[6] लोभ की समझ, सूक्ष्मता से

प्रश्नकर्ता : किस प्रकार के दोष इतने भारी होते हैं कि जो कई जन्मों तक चलते हैं? कई जन्म करने पड़ें ऐसे दोष कौन से?

दादाश्री : लोभ! लोभ कई जन्मों तक साथ रहता है। जो लोभी होगा वह प्रत्येक जन्म में लोभी रहेगा, यानी उसे बहुत अच्छा यह लगता है!

प्रश्नकर्ता : करोड़ों रुपये होने के बावजूद धर्म में पैसे नहीं दे सकते, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : बंधे हुए बंध कैसे छूटें? इसलिए कोई छूट नहीं पाता और बंधा हुआ ही रहता है। खुद खाता भी नहीं। किसके लिए जमा करता है? पहले तो साँप होकर चक्कर काटते थे। धन गाड़ते थे न तो, वहाँ साँप बनकर फिरते थे और रक्षा करते थे, 'मेरा धन, मेरा धन' करते!

'जीना आया' तो किसे कहेंगे? जो अपने पास आए वह दूसरों के लिए लुटा दें। उसका नाम 'जीना आया'। पागलपन नहीं, सयानेपन से लुटा दें। पागलपन में शराब वगैरह पीते हैं, उसमें बरकत नहीं आती। कोई व्यसन न हो और लुटा दे। देखो, ये लुटा रहे हैं न! यह पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है।

पुण्यानुबंधी पुण्य कौन-सा? किसी भी क्रिया में बदले की इच्छा नहीं करे, वह पुण्यानुबंधी पुण्य! सामने वाले को सुख पहुँचाते समय किसी भी प्रकार के बदले की इच्छा नहीं रखे, उसका नाम पुण्यानुबंधी पुण्य।

प्रश्नकर्ता : पैसा साथ ले जाना हो तो, किस तरह ले जा सकते हैं?

दादाश्री : रास्ता तो एक ही है। जो हमारे रिश्तेदार न हो ऐसे परायों के दिल को ठंडक पहुँचायी हो, तो साथ आएगा। रिश्तेदारों को ठंडक पहुँचायी हो तो वह साथ नहीं आता, लेकिन हिसाब चुकता हो जाता है।

अथवा हम (दादाजी) जैसों से कहोगे तो लोगों के लिए हितकर हो ऐसा ज्ञान दान बताएँगे। अच्छी पुस्तकें छपवाएँ कि जिन्हें पढ़ने से कई लोग सही रास्ते पर आ जाएँ। हमें पूछें तो हम बताएँगे। हमें लेना-देना नहीं होता।

लोभी ने ऐसा माना है कि पैसे संग्रह करूँगा तो मुझे सुख मिलेगा और फिर दुःख कभी भी नहीं आएगा। लेकिन वह संग्रह करते-करते लोभी वैसा ही बन जाता है। खुद लोभी बन जाता है। किफ़ायत करनी है, इकोनोमी करनी है, लेकिन लोभ नहीं करना है।

लोभ कहाँ से घुसता है? उसकी शुरूआत कहाँ से होती है? पैसे नहीं होते उस घड़ी लोभ नहीं होता। लेकिन यदि निन्यानवे हो जाएँ, तब मन में ऐसा होता है कि आज घर में खर्च नहीं करेंगे लेकिन एक रुपया बचाकर सौ पूरे करने हैं। यह लगा निन्यानवे का धक्का। वह धक्का लगा, तो फिर वह लोभ पाँच करोड़ होने पर भी नहीं छूटेगा। वह तो ज्ञानी पुरुष धक्का लगाएँ, तब छूटेगा!

लोभी सुबह उठे तभी से लोभ करता रहता है। सारा दिन उसी में बीतता है। कहेगा, भिंड़ी महंगी है। बाल कटवाने में भी लोभ! आज बाईस दिन हुए है, पूरा महीना होने दो, कोई परेशानी नहीं है। आया समझ में? यह स्वभाव है, इसलिए यह गाँठ उसे बार-बार ऐसा दिखाती रहती है और कषाय होते रहते हैं। कपट और लोभ दोनों बहुत विकट हैं।

पाँच-पचास रुपये हाथ में होते हैं, फिर भी रिक्षा का खर्चा नहीं करता। शरीर से चला नहीं जाता, फिर भी! तब मैंने उसे कहा कि, 'ऐसा मत करो। कुछ रुपये, दस-दस रुपये रिक्षे का खर्च करना शुरू करो।' तब उसने कहा कि खर्च ही नहीं कर पाता। देने पड़े तो खाना नहीं भाता। 'अब वहाँ हिसाब से तो मुझे भी पता चलता है कि गलत है। प्रकृति मना करती है', तब एक बार मैंने उसे कहा कि सिक्के लेकर रास्ते में डालते हुए आना! तब एक दिन थोड़े डालें, फिर नहीं डालें।

ऐसे दो-चार बार डालेंगे तो अपना मन क्या कहेगा कि 'ये (चंदूभाई) अपने काबू में नहीं रहे, हमारी सुनते नहीं हैं।' तो ऐसा करने से हमारा मन-वन सब बदल जाएगा। हमें उससे उल्टा करना पड़ेगा। वह तो करना पड़ेगा, उल्टा किए बगैर नहीं चलेगा। जैसे घर

के लोग यदि काबू में नहीं आएँ तो उल्टा करना पड़ता है, उसी तरह मन को काबू करने के लिए उल्टा करना पड़ेगा।

लोभ की ग्रंथि यानी क्या? कहाँ कितने हैं? वहाँ कितने हैं? यही लक्ष्य में रहता है। बैंक में इतने हैं, उसके वहाँ इतने हैं, इस जगह पर इतने हैं, यही लक्ष्य में रहता है। 'मैं आत्मा हूँ' वह उसे लक्ष्य में नहीं रहता। वह लक्ष्य टूट जाना चाहिए, लोभ का। 'मैं आत्मा हूँ' यही लक्ष्य रहना चाहिए।

लोभी तो स्वभाव से ही ऐसा होता है कि किसी भी रंग में रंगता ही नहीं। उस पर कोई रंग नहीं चढ़ता! अगर कोई लोभी हो तो आप इतना देख लेना कि उस पर कोई रंग नहीं चढ़ेगा! लाल रंग में डुबोयें फिर भी पीला का पीला! हरे रंग में डुबोयें फिर भी पीला का पीला!

लोभ रहित सभी लोग रंग जाते हैं। ऊपर से हँसता है तो लगता है जैसे कि रंग गया। मैं जो बातें करता हूँ वह सुनता सभी है। 'बहुत अच्छी बात है, बहुत आनंद की बात है, ऐसा कहता है लेकिन भीतर तन्मयाकार नहीं होता। अर्थात् दूसरे लोग घर-बार भूल जाएँ लेकिन वह नहीं भूलता। उसका लोभ नहीं भूलता। अभी इनके साथ इनकी गाड़ी में जाऊँगा तो पाँच बचेंगे, यह भूलता नहीं। दूसरे तो पाँच बचाना करना भूल भी जाएँगे। 'बाद में चले जाएँगे', ऐसा कहते हैं। जब कि यह कुछ नहीं भूलता। वह रंग में रग गया, ऐसा नहीं कहलाता। रंगाया कब कहलाएगा कि जब तन्मयाकार हो जाए पूरा, घर-बार सब भूल जाए। आप नहीं समझे? ये लोग नहीं कहते कि दादाजी का रंग लगा? उसे दादाजी का रंग नहीं लगता, चाहे कितनी ही बार उसे रंग में डूबोते रहें, फिर भी।

मन में पैसे देने का भाव हो तब भी दे नहीं पाए, वह लोभ की ग्रंथि।

प्रश्नकर्ता : संयोग ही ऐसे होते हैं कि देने का भाव होने पर भी नहीं दे सकते।

दादाश्री : वह अलग बात है। वह तो हमें ऐसा लगता है कि संयोग ऐसे हैं, लेकिन ऐसा होता नहीं है। देने का निश्चय करें तो दे पाएँगे, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन हों फिर भी नहीं देता।

दादाश्री : हों फिर भी नहीं दे पाता, दे ही नहीं सकता न, वह बंध टूटता नहीं। वह बंध टूट जाए तो मोक्ष हो जाएगा न! वह आसान चीज़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यों तो सभी की लिमिट में देने की कुछ शक्ति तो होती ही है न?

दादाश्री : नहीं, वह लोभ के कारण नहीं होती। लोभी के पास लाख रुपये हों, फिर भी चार आने देना मुश्किल हो जाता है। बुखार चढ़ जाता है। अरे, पुस्तक में पढ़े कि ज्ञानी पुरुष की तन-मन-धन से सेवा करनी चाहिए, तो उस घड़ी पढ़ते समय ही बुखार चढ़ जाता है कि ऐसा क्यों लिखा है!

लोभ टूटने के दो रास्ते। एक, ज्ञानी पुरुष तुड़वा दें, उनके वचन बल से। और दूसरा, ज़बरदस्त नुकसान हो जाए तो छूट जाता है कि मुझे कुछ नहीं करना, अब जो बचे हैं उनसे निभा लेना है। मुझे कितने ही लोगों से कहना पड़ता है कि घाटा आने पर लोभ छूटेगा, वर्ना लोभ छूटने वाला नहीं। हमारे कहने से भी नहीं छूटे, ऐसी पक्की गांठ पड़ चुकी होती है।

लोभी की गांठ नुकसान से जाती है। अथवा यदि ज्ञानी पुरुष की आज्ञा मिल जाए तो उत्तम। फिर आज्ञा का पालन करने को तैयार नहीं हो, उसे कौन सुधारे?

सत्संग में रहने से ही गांठें कम होंगी, जब तक सत्संग का परिचय नहीं हो तब तक गांठों का पता नहीं चलता। सत्संग में रहने से वे निर्मल होती हुई नज़र आती हैं। 'आप' दूर रहे न! दूर रहकर सब देखो आराम से। तो आपको सब दोष दिखेंगे। यदि गांठों में

रहकर देखते हैं, तो दोष नहीं दिखते। इसीलिए कृपालुदेव ने कहा है, *'दीठा नहीं निज दोष तो तरिए कोन उपाय!'*

हमारा जीवन किसी के लाभ के लिए व्यतीत होना चाहिए, जैसे यह जो मोमबत्ती जलती है, वह क्या खुद के प्रकाश के लिए जलती है? औरों के लिए, परार्थ जलती है न? औरों के फ़ायदें के लिए जलती है न? इसी प्रकार ये मनुष्य औरों के फायदें (कल्याण) के लिए जीएँ तो खुद का फायदा (कल्याण) तो उसमें निहित ही है। यों भी, मरना तो है ही एक दिन। यदि औंरो का फायदा करने जाएगा तो तेरा फायदा तो उसमें निहित होगा ही। और यदि औरों को कष्ट देगा तो खुद को कष्ट है ही अंदर। तुझे जो करना हो, वह करना।

आत्मा प्राप्त करने के लिए जो कुछ भी किया जाता है, वह मेन प्रोडक्शन है, और उसके कारण बाइ-प्रोडक्शन प्राप्त होता है, जिससे सारी संसारी ज़रूरतें प्राप्त होती है। मैं अपना एक ही तरह का प्रोडक्शन रखता हूँ, 'संसार सारा परम शांति पाएँ और कुछ मोक्ष पाएँ।' मेरा यह प्रोडक्शन और उसका बाइ-प्रोडक्शन मुझे मिलता ही रहता है। हमें चाय-नाश्ता आपसे कुछ अलग तरह का मिलता है, उसका क्या कारण है? आपकी तुलना में मेरा प्रोडक्शन उच्च कोटि का है। वैसे ही, आपका प्रोडक्शन यदि उच्च कोटी का होगा तो बाइ-प्रोडक्शन भी उच्च कोटि का आएगा!

आपको सिर्फ हेतु बदलना है, और कुछ नहीं करना है। पंप के इन्जन का एक पट्टा इस ओर लगाने से पानी निकलेगा और उस ओर लगाने से धान में से चावल निकलेंगे, अर्थात् सिर्फ पट्टा लगाने का ही फ़र्क है। हेतु निश्चित करना है और वह हेतु फिर हमें लक्ष्य में रहना चाहिए। बस, और कुछ नहीं है। लक्ष्मी लक्ष्य में नहीं रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी का सदुपयोग किसे कहेंगे?

दादाश्री : लोगों के उपयोग हेतु या भगवान हेतु खर्च करोगे न तो वह सदुपयोग कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी टिकती नहीं, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : लक्ष्मी तो टिके ऐसी है ही नहीं। लेकिन उसका रास्ता बदल देना। दूसरे रास्ते जा रही हो तो उसका प्रवाह बदल देना और धर्म के रास्ते पर मोड़ देना। जितनी सुमार्ग पर गई उतनी सही। भगवान आएँगे फिर लक्ष्मी जी टिकेंगी, उसके बिना लक्ष्मी कैसे टिकेगी?

पैसे गलत रास्ते पर गए तो कंट्रोल कर देना और पैसे सही रास्ते खर्च हों तो डीकंट्रोल कर देना।

ये भाई किसी व्यक्ति को दान दे रहे हों, और यदि वहाँ पर कोई बुद्धिमान कहे कि, 'अरे, इसे क्यों दे रहे हो?' तब ये कहेंगे, 'अब देने दीजिए न, गरीब है।' ऐसा कहकर दान देते हैं और वह गरीब ले लेता है। लेकिन वह बुद्धिमान बोला उससे उसे अंतराय पड़ा। इससे फिर उसे दुःख में कोई दाता नहीं मिलेगा।

[7] दान के प्रवाह

अब तो हम पश्चाताप से सब मिटा सकते हैं और मन में निश्चय कर लें कि ऐसा नहीं बोलना चाहिए। और बोला, 'उसके लिए क्षमा माँगता हूँ', तो मिट जाएगा। क्योंकि वह खत पोस्ट में गया नहीं है। उसके पहले हम परिवर्तन कर डालें कि पहले हमने मन में विचार किया था कि 'दान नहीं देना चाहिए' वह गलत है। लेकिन अब हम विचार करते हैं कि 'यह दान करना अच्छा है।' इसलिए उसके पहले का मिट जाएगा।

खरे समय पर तो एक धर्म ही आपको मदद करके खड़ा रहता है, इसलिए धर्म के प्रवाह में लक्ष्मी जी को जाने देना।

पैसों का स्वभाव कैसा है? चंचल है, इसलिए आते हैं और एक दिन वापस चले जाते हैं। इसलिए पैसे लोगों के हित के लिए खर्च करने चाहिए। जब आपका खराब उदय आया हो, तब लोगों को दिया हुआ होगा, वही आपको हैल्प करेगा। इसलिए पहले से ही समझना चाहिए। पैसों का सद्व्यय तो करना ही चाहिए न?

चार प्रकार के दान हैं। एक आहारदान, दूसरा औषधदान, तीसरा ज्ञानदान और चौथा अभयदान।

ज्ञानदान में पुस्तकें छपवानी, लोगों को सच्चे रास्ते पर ले जाएँ और लोगों का कल्याण हो, ऐसी पुस्तकें छपवानी आदि वह, ज्ञानदान। ज्ञानदान दें, तो अच्छी गतियों में, ऊँची गतियों में जाता है या फिर मोक्ष में भी जाता है।

इसलिए मुख्य वस्तु ज्ञानदान भगवान ने कहा है और जहाँ पैसों की ज़रूरत नहीं है, वहाँ अभयदान की बात कही है। जहाँ पैसों का लेन-देन है, वहाँ पर ये ज्ञानदान का कहा है और साधारण स्थिति, नरम स्थिति के लोगों को औषधदान और आहारदान, दो का कहा है।

और चौथा अभयदान। अभयदान तो, किसी भी जीव मात्र को त्रास न हो ऐसा वर्तन रखना, वह अभयदान।

प्रश्नकर्ता : धर्म में दो नंबर का पैसा है, वह खर्च होता है अभी के ज़माने में, तो उससे लोगों को पुण्योपार्जन होता है क्या?

दादाश्री : अवश्य होता है न! उसने त्याग किया न उतना! अपने पास आए हुए का त्याग किया न! लेकिन उसमें हेतु के अनुसार फिर वह पुण्य ऐसा हो जाता है हेतु वाला! ये पैसे दिए, वह एक ही वस्तु नहीं देखी जाती। पैसों का त्याग किया वह निर्विवाद है। बाकी पैसा कहाँ से आया? हेतु क्या? यह सभी प्लस-माइनस होते-होते जो बाकी रहेगा, वह उसका। उसका हेतु क्या है कि सरकार ले जाएगी, उसके बजाय इसमें डाल दो न!

प्रश्नकर्ता : लोग लक्ष्मी जमा करके रखते हैं, वह हिंसा कहलाएगी या नहीं?

दादाश्री : हिंसा ही कहलाएगी। जमा करना वह हिंसा है। दूसरे लोगों के काम लगता नहीं न!

प्रश्नकर्ता : कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा से जो दान करते हैं, उसकी भी शास्त्रों में मनाही नहीं है? उसकी निंदा नहीं की है?

दादाश्री : वह अपेक्षा न रखें तो उत्तम है। अपेक्षा रखते हैं, वह दान निर्मूल हो गया, सत्वहीन हो गया कहलाता है। मैं तो कहता हूँ कि पाँच ही रुपये दो, लेकिन बिना अपेक्षा के दो।

कोई धर्म में लाख रुपये दान देता है और तख़्ती लगवाता है और कोई मनुष्य एक रुपया ही धर्म में दे, लेकिन गुप्त रूप से दे, तो ये गुप्त रूप से दिया उसकी बहुत क़ीमत है, फिर भले ही उसने एक ही रुपया क्यों न दिया हो। और यह तख़्ती लगवाई वह तो 'बैलेन्स शीट' पूरी हो गई। जो धर्म में दान दिया उसका बदला उसमें तख़्ती लगवाकर ले लिया। और जिसने एक ही रुपया प्राईवेट में दिया होगा, लेकिन उसका लेन-देन हुआ नहीं, इसलिए उसका बैलेन्स बाकी रहा।

प्रश्नकर्ता : पुण्य के उदय से ज़रूरत से ज़्यादा लक्ष्मी की प्राप्ति हो तो?

दादाश्री : तो खर्च कर देनी चाहिए। संतानों के लिए अधिक रखनी नहीं चाहिए। उन्हें पढ़ाना-लिखाना, सब कम्प्लीट करके, उन्हें सर्विस पर लगा दिया, तो फिर वे काम पर लग गए, इसलिए बहुत नहीं रखनी चाहिए। थोड़ा बैन्क में, किसी जगह पर रख छोड़ना, दस-बीस हज़ार, तो कभी मुश्किल में पड़ा हो तो उसे दे देना। उसे बताना नहीं कि, भाई मैंने रख छोड़े हैं। हाँ, नहीं तो मुश्किल में नहीं आते हों तो भी आ जाओगे।

एक व्यक्ति ने मुझ से प्रश्न किया कि 'बच्चों को कुछ नहीं देना चाहिए?' मैंने कहा, 'संतानों को देना चाहिए। हमारे बाप ने हमें जो दिया हो वह सभी दे देना चाहिए। बीच का जो माल है, वह अपना। उसे हम चाहे वहाँ धर्म के लिए दान में खर्च कर दें।'

प्रश्नकर्ता : हमारे वकीलों के कानून में भी ऐसा है कि पैतृक संपत्ति है, उसे संतानों को देनी ही पड़ेगी और स्वोपार्जित है, उसके बाप को जो करना हो वह करे।

दादाश्री : हाँ, जो करना हो वह करे। अपने हाथों ही कर लेना चाहिए! अपना मार्ग क्या कहता है कि तेरा खुद का माल हो,

वह माल तू अलग करके खर्च कर, तो वह तेरे साथ आएगा। क्योंकि यह ज्ञान लेने के बाद अभी एक-दो अवतार बाकी रहे हैं, इसलिए साथ में चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : अगले जन्म के पुण्य के उपार्जन के लिए इस जन्म में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : इस जन्म में जो पैसे आएँ उसका पाँचवाँ हिस्सा भगवान के यहाँ मंदिर में डाल देना या फिर लोगों के सुख के लिए खर्च करना। इसलिए उतना तो वहाँ ओवरड्राफ्ट पहुँचा! ये पिछले जन्म के ओवरड्राफ्ट तो भोग रहे हो। इस जन्म का पुण्य है, वह आगे आएगा फिर। अभी की कमाई आगे चलेगी।

[8] लक्ष्मी और धर्म

मोक्षमार्ग में दो चीज़ें नहीं होनी चाहिए। स्त्री के विचार और लक्ष्मी के विचार! जहाँ स्त्री का विचार मात्र भी हो, वहाँ धर्म नहीं होता। लक्ष्मी का विचार मात्र भी हो, वहाँ धर्म नहीं होता। इन दो मायाओं के कारण तो यह संसार खड़ा है। हाँ, इसलिए वहाँ पर धर्म ढूँढना भूल है। जब कि अभी लक्ष्मी के बिना कितने केन्द्र चलते हैं?

तीसरा क्या? सम्यक् दृष्टि होनी चाहिए।

इसलिए लक्ष्मी और स्त्री संबंध हों, वहाँ पर खड़े मत रहना। गुरु देखकर बनाना। लीकेज वाला हो तो मत बनाना।

जिनकी सर्वस्व प्रकार की भीख खत्म हो गई, उनके हाथ में इस जगत् के तमाम सूत्र दिए जाते हैं, लेकिन भीख जाए तब न! कितने प्रकार की भीख! लक्ष्मी की भीख, कीर्ति की भीख, विषयों की भीख, शिष्यों की भीख, मंदिर बनवाने की भीख, सारी भीख, भीख और भीख ही है! वहाँ आपको क्या प्राप्त होगा?

एक व्यक्ति मुझसे पूछता है कि, 'उसमें दुकानदारों का दोष है या ग्राहकों का दोष?' मैंने कहा, 'ग्राहकों का दोष!' दुकानदार तो भले ही कैसी भी दुकान लगाकर बैठें, लेकिन हम नहीं समझ जाएँ?

संत पुरुष तो पैसे लेते ही नहीं। दुखिया है, इसीलिए तो वह आपके पास आया और ऊपर से उसके सौ छीन लिए! किसी ने यदि हिन्दुस्तान को खत्म किया हो, तो ऐसे संतों ने खत्म किया है। संत तो वह कहलाता है कि जो अपना सुख दूसरों में बाँटे। सुख लेने नहीं आए होते।

यह संघ इतना अधिक शुद्ध है कि मैं (दादाजी) तो अपने घर के कपड़े और धोती पहनता हूँ। मेरे खुद के कमाए हुए, खुद की कमाई में से ही, इसलिए ऐसे साधारण (कपड़ों में) घूमता हूँ। संघ के पहनता तो धोती चार सौ-चार सौ की भी मिलती है न? अरे, मैं तो नहीं लेता, लेकिन ये (नीरू) बहन भी नहीं लेतीं! ये बहन भी मेरे साथ रहती हैं और वे अपने घर के कपड़े पहनती हैं।

इस दुनिया में आपकी जितनी स्वच्छता, उतनी दुनिया आपकी! आप मालिक हो इस दुनिया के! मैं छब्बीस सालों से इस देह का मालिक नहीं हुआ, इसलिए हमारी स्वच्छता संपूर्ण होती है! अतः स्वच्छ हो जाओ, स्वच्छ!

स्वच्छता अर्थात् इस दुनिया की किसी भी चीज़ की जिसे ज़रूरत नहीं हो, भिखारीपन ही नहीं हो!

अब भी पछतावा करोगे तो इसी देह में रहते हुए पाप भस्मीभूत कर सकोगे। पछतावे की ही सामायिक करो। किसकी सामायिक? पछतावे की सामायिक, क्या पछतावा? तब कहे, मैंने लोगों से गलत पैसे लिए हैं। वे सभी जिनसे भी लिए हों, उनका नाम लेकर, उनका चेहरा याद करके, व्यभिचार आदि किया हो, दृष्टि बिगाड़ी हो और वे सभी पाप धोना चाहो तो अब भी धो सकते हो।

लोगों का कल्याण तो कब होगा? जब बिल्कुल स्वच्छ हो जाएँगे तब! प्योरिटी ही सभी को, सारे संसार को आकर्षित करेगी! प्योरिटी! प्योर वस्तु जगत् को आकर्षित करती है। इमप्योरिटी संसार को फ्रेक्चर कर डालती है। इसीलिए प्योरिटी लाओ!

- **जय सच्चिदानंद**

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

उपाधि : परेशानी

शाता : सुख-परिणाम

अशाता : दुःख-परिणाम

अणहक्क : बिना हक़ का

पूरण-गलन : चार्ज होना-डिस्चार्ज होना

अटकन : जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे

तरछोड़ : तिरस्कार सहित दुत्कारना

निकाल : निपटारा

ऊपरी : बॉस

पुद्गल : अहंकार

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज (मुख्य केन्द्र) : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	9810098564	**बेंगलूर**	9590979099
कोलकता	9830093230	**हैदराबाद**	9885058771
चेन्नई	7200740000	**पूणे**	7218473468
जयपुर	8890357990	**जलंधर**	9814063043
भोपाल	6354602399	**चंडीगढ़**	9780732237
इन्दौर	6354602400	**कानपुर**	9452525981
रायपुर	9329644433	**सांगली**	9423870798
पटना	7352723132	**भुवनेश्वर**	8763073111
अमरावती	9422915064	**वाराणसी**	9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 795-92-DADA (3232)

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 402179706

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 91457800

www.dadabhagwan.org



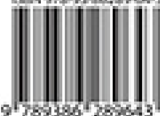
'दादा' का गणित

ये पैसे आप बढ़ाते रहोगे, तो कहाँ तक पहुँचोगे ? उसके बाद मैंने तो पैसों का हिसाब निकाला कि यहाँ पर इस दुनिया में किसी का भी पहला नंबर नहीं आया है। लोग कहते हैं कि 'फोर्ड का पहला नंबर है।' पर चार साल बाद किसी दूसरे का नाम सुनाई देता है। अर्थात् किसी का नंबर टिकता नहीं है। बिना वजह यहाँ भागदौड़ करें, उसका क्या अर्थ है ? पहले घोड़े को इनाम मिलता है, दूसरे को देते हैं और तीसरे को थोड़ा देते हैं और चौथे को हाँफकर मर जाना है ? मैंने कहा, 'इस रेसकोर्स में, मैं कहाँ उतरूँ ?' फिर ये लोग तो चौथा, पाँचवाँ या बारहवाँ, सौवाँ नंबर देते हैं न! अरे, तो फिर हम क्यों हाँफें ? हाँफेंगे नहीं फिर ? पहला आने के लिए दौड़ा और आया बारहवाँ, फिर कोई चाय भी नहीं पिलाता, आपको क्या लगता है ?

– दादाश्री



dadabhagwan.org


ISBN 978-93-86289-64-3
9 789386 289643
Printed in India
Price ₹35